सार्थ सौन्दर्य लहरी
भवानीशंकर

साधनमाला- तृतीय वर्ष-
६, ७, ८ मणि

सार्थ सौन्दर्य-लहरी

व्याख्याकार

परम पूज्य श्री १०८ योगिराज महाराज
बाबा श्री मोतीलाल जी मेहता

प्रकाशक

कल्याण-मन्दिर, कटरा, प्रयाग २

प्रथम संस्करण] कार्तिक पूर्णिमा, २००६ [मू० २॥), सजि० ३)

प्रयोग-फल

सौन्दर्य-लहरी के मन्त्ररूप श्लोकों के जो प्रयोग इस पुस्तक में बताये गये हैं, उनके करने से जो फल प्राप्त होता है, वह यहाँ प्रत्येक श्लोक का दिया गया है। प्रयोगकर्ता संकल्प-वाक्य में उद्देश्य को स्पष्ट करके प्रयोग करे; अवश्य इष्ट-लाभ होगा, इसमें सन्देह नहीं।

श्लोक-संख्या	फल	श्लोक-संख्या	फल
१	सत्कामना की पूर्ति	१७	सर्व ज्ञान-प्राप्ति
२	कालभय-निवारण	१८	वशीकरण
३	दारिद्र्य-निवारण	१९	सर्वलोक वशीकरण
४	संकट से रक्षा	२०	रोग-निवारण
५	मोहन	२१	आत्म-साक्षात्कार
६	विजय-प्राप्ति	२२	मुक्ति-प्राप्ति
७	सर्व सिद्धि प्राप्ति	२३	आकर्षण
८	सर्व कामनाओं की पूर्ति	२४	सन्तान-प्राप्ति
९	सिद्धि-प्राप्ति	२५	सर्व कामना-सिद्धि
१०	कल्याण की प्राप्ति	२६	साक्षात्कार
११	भक्ति-प्राप्ति	२७	सर्व कामना-सिद्धि
१२	इष्ट-दर्शन	२८	मृत्युञ्जय
१३	वशीकरण	२९	विजय-प्राप्ति
१४	सर्व सिद्धि प्राप्ति	३०	सर्व आपत्ति-निवारण
१५	विद्या-प्राप्ति	३१	सर्व कामना-सिद्धि
१६	कवित्व-सिद्धि	३२	कल्याण-प्राप्ति

श्लोक-संख्या	फल	श्लोक-संख्या	फल
३३	सर्व कामना-सिद्धि	५९	विजय-प्राप्ति
३४	आत्म-साक्षात्कार	६०	कवित्व-सिद्धि
३५	इष्ट-सिद्धि	६१	ऐश्वर्य-प्राप्ति
३६	भीति-निवारण	६२	सौभाग्य-वर्द्धन
३७	आत्मसाक्षात्कार	६३	दुःख-निवारण
३८	ज्ञान-प्राप्ति	६४	वाक्सिद्धि
३९	भीति-निवारण	६५	विजय-प्राप्ति
४०	अज्ञान-निवारण	६६	कवित्व-सिद्धि
४१	सन्तान-प्राप्ति	६७	ऐश्वर्य-प्राप्ति
४२	समृद्धि-प्राप्ति	६८	लक्ष्मी-सिद्धि
४३	मोह-निवारण	६९	संगीत-सिद्धि
४४	कल्याण-प्राप्ति	७०	संकट-निवारण
४५	मोहन	७१	सौभाग्यवर्द्धन
४६	ज्ञान कामना-पूर्ति	७२	वैभव-प्राप्ति
४७	भीति-निवारण	७३	लक्ष्मी-सिद्धि
४८	सौभाग्य-वर्द्धन	७४	कीर्ति-प्राप्ति
४९	सर्व कल्याण-प्राप्ति	७५	कवित्व-सिद्धि
५०	विद्वेषण	७६	भीति-निवारण
५१	इष्ट-सिद्धि	७७	संकट-निवारण
५२	मोहन	७८	इष्ट-सिद्धि
५३	ज्ञान-प्राप्ति	७९	मङ्गल की प्राप्ति
५४	पाप-मोचन	८०	स्तम्भन
५५	संरक्षा-प्राप्ति	८१	आकर्षण
५६	विजय-प्राप्ति	८२	विजय-प्राप्ति
५७	संकट-निवारण	८३	विजय-प्राप्ति
५८	आकर्षण	८४	इष्ट-सिद्धि

श्लोक-संख्या	फल
८५	सौभाग्य वर्द्धन
८६	विजय-प्राप्ति
८७	लक्ष्मी-सिद्धि
८८	इष्ट-सिद्धि
८९	दारिद्र्य-निवारण
९०	दारिद्र्य-निवारण
९१	संगीत-सिद्धि
९२	इष्ट-सिद्धि
९३	कल्याण-सिद्धि
९४	विजय-प्राप्ति
९५	अभाव-पूर्ति
९६	उच्चाटन
९७	इष्ट-सिद्धि
९८	आत्म-साक्षात्कार
९९	आत्मबोध
१००	सरस्वती-सिद्धि
१०१	सर्व कामना-सिद्धि

शुद्धि-पत्र

कहीं-कहीं टाइप गिर गये हैं, जैसे पृष्ठ ५ की पंक्ति २ में 'है', पृष्ठ ६ की पंक्ति १४ में 'उन्हें' का 'हें'। पाठक सुधार लें। विशेष अशुद्धियाँ ये हैं—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६	१६	क्लीं ब्लैं	ह्रीं क्लीं ब्लैं
६	१८	—ई	में से—ई
१६	१८	शिव-शक्ति	में शिव-शक्ति
१६	१६	श्लोक	श्लोक में
२२	४	शताक्षरी	में शताक्षरी
४३	११	पूजन	पूजन में
४४	११	लखी	लिखी
७०	१२	ओर 'क्लैं'	और 'क्लीं'
८१	२२	द्दव	इव

परम पूज्य श्री बावा जी

भूमिका

पूज्य-चरण श्रीमान् बाबा जी ने शाक्तोपासना के सम्बन्ध में बहुसंख्यक पुस्तकें लिखी हैं। दुःख की बात है कि वे सभी अप्रकाशित हैं। विशेष अनुनय-विनय करने पर ही हम उनकी अभी तक तीन पुस्तकें प्रकाशित करने की अनुमति पा सके हैं। इस चौथी पुस्तक 'सार्थ सौन्दर्य-लहरी' के प्रकाशित करने में हमें अत्यधिक हर्ष हो रहा है। शाक्त-साधकों के बीच इस स्तवराज का बड़ा माहात्म्य है। इसके सम्बन्ध में किम्वदन्ती है कि आद्य शङ्कराचार्य आशुतोष महादेव के दर्शनार्थ कैलाश गये थे। दर्शनोपरान्त उन्होंने 'सौन्दर्य-लहरी' की याचना की। शूलपाणि ने प्रसन्न होकर उन्हें एक प्रति प्रदान कर दी। जब वे उसे लेकर बाहर निकले तब उस पुस्तक पर नन्दी की निगाह पड़ी। उन्होंने झपटकर शङ्कर से उस प्रति के छीनने का प्रयत्न किया परन्तु पुस्तक का अर्द्धांश ही उनके हाथ लगा। शेष पुस्तक लेकर शङ्कर मर्त्यलोक में आ गये। यहाँ उन्होंने महादेव की कृपा से नष्ट अंश का पुनरुद्धार कर लिया। 'सौन्दर्य-लहरी' एक ऐसी ही श्रुति है। साधक लोग इसके प्रत्येक श्लोक को मन्त्ररूप में ग्रहण कर उसका प्रयोग करते हैं। श्रीमान् बाबा जी ने अपनी इस पुस्तक में ऐसे प्रयोगों को विस्तार के साथ बताया है। अतएव लहरी का यह संस्करण साधकों के लिए अत्यधिक उपयोगी हो गया है।

इसमें भगवती का जो नख-शिख वर्णन है, वह शिख से लगाकर नख तक किया गया है। ऐसा कवि-रीति के विपरीत

वर्णन करने का अधिकार आद्य शङ्कराचार्य को प्राप्त था क्योंकि वे स्वयं सिद्ध शिव-रूप थे। लिखा भी है—

पतिं नारीवानुरक्ता देवी भक्तं भजेज्जनं।

(मूर्ति-रहस्य ६ श्लोक)

एक बात और। वह यह कि सहस्रार से मूलाधार और मूलाधार से सहस्रार—यही योगी लोगों का ध्यान-क्रम है। जीव का व्यापकत्व से व्यक्तित्व पर आना और व्यक्तित्व से पुनः व्यापकत्व में जाना अर्थात् निजरूप में लय होना—यह ध्यानयोग का अभ्यास-क्रम है। इसीलिए सौन्दर्य-लहरी में समयाचार के साधना-क्रम में इसी ध्यानयोग का वर्णन हुआ है। कुछ अभ्यासी आज्ञा से प्रारम्भ कर जीवचक्र में होते हुए मूलाधार में उतरते हैं और मूलाधार में अविद्या को लय कर सहस्रार में विद्याकाश के परे स्थित होने का प्रयत्न करते हैं—

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।

(ईशावास्योपनिषद्)

दूसरी बात यह है कि सौन्दर्य-लहरी में स्वाधिष्ठानचक्र के स्थान में मणिपूर का उल्लेख हुआ है। यह आचार्य शङ्कर के विचार से ठीक हो सकता है परन्तु साधारण साधक को साधन-क्रम में गड़बड़ न हो, इस दृष्टि से चक्र-नियम के अनुसार ही प्रस्तुत टीका में परम पूज्य श्री बाबा जी ने तत्सम्बन्धी परिवर्तन करना उचित समझा। पाठक इन बातों को ध्यान में रखकर अपना समाधान करने का कष्ट करेंगे।

यह सब निवेदन करने का अधिकार मुझे नहीं है परन्तु आवश्यकतावश श्री गुरुदेव से प्रबुद्ध होकर यह अनधिकार चेष्टा, मुझे यहाँ करनी पड़ी है, इसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

—देवीदत्त शुक्ल

उपोद्घात

लेखक—परम पूज्य १०८ श्री स्वामी जी महाराज, दतिया

ब्रह्मेशाच्युतशक्राद्यैर्महर्षिभिरुपासिता ।
जगतां श्रेयसे सास्तु मणिद्वीपाधिदेवता ॥

आचार्य श्री शङ्कर भगवत्पाद-प्रणीत स्तोत्र-साहित्य में सौन्दर्य-लहरी परम गुह्य एवं रहस्यमय तत्त्वों को प्रकाशित करने से अपना सर्वमूर्धन्य स्थान रखती है। श्री श्रीविद्योपासना के रहस्यों को प्रदर्शित करने में साधक-समुदाय में श्रुति के तुल्य इसका प्रामाण्य माना जाता है। यह स्तोत्र-रत्न दो उन्मेषों में विभक्त है। पहले उन्मेष में ४१ श्लोक हैं तथा दूसरे में ६० सुन्दर श्लोक ग्रथित किये गये हैं। पहले उन्मेष में तान्त्रिक साधना के रहस्यों का वर्णन बड़े ही सुन्दर प्रकार से किया गया है। अवशिष्ट भाग में श्री भगवती का नख-शिख-पर्यन्त अपूर्व वर्णन किया गया है। कविता मनोहारिणी, प्रसादगुणयुक्त, कोमल कान्त पदावलीवाली तथा काव्य दोषों से सर्वथा रहित है। साहित्य के सभी गुण इसमें विद्यमान हैं। इसके रहस्यमय तत्त्वों को प्रकट करने के लिए अनेक टीकायें इसकी हुई हैं। तो भी ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें अभी अनेक रहस्य छिपे ही हुए हैं।

पण्डित लक्ष्मीधर कृत टीका प्रधान मानी जाती है। वह आचार्य स्वामी के मन्तव्य को विशद रूपेण प्रकट करती है। श्री लक्ष्मीधर के मत से पञ्चशुभागमों के मतानुसार समयाचार

को लक्ष्य करके इसकी रचना की गई है और यही इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। कहते हैं कि इसका मूल श्री सुरेश्वराचार्य की बनाई हुई सौन्दर्य-लहरी की एक टीका है, जो शृङ्गेरी-मठ में विद्यमान है। अन्य टीकाकारों का वैमत्य भी इस विषय पर है। उनके मत से कौल मत में भी इसका मन्तव्य सुश्लिष्ट रूप से संगत हो सकता है। जगद्विजयी श्री राम कवि की डिम-डिम व्याख्या तथा कविराज की टीका मुख्यतः इसी दिशा की टीकायें हैं। 'ताराभक्ति सुधार्णव' के कर्ता श्री नरसिंह ठक्कुर ने द्व्यर्थक एक टीका बनाई है; श्लोक का एक पक्ष श्रीकृष्ण के प्रतिपादन में तथा दूसरा पक्ष श्री ललिता महात्रिपुरसुन्दरी के वर्णन में है। यह टीका तान्त्रिक अर्थों से पूर्ण और सुन्दर है। श्री कैवल्याश्रम स्वामी, श्री अच्युतानन्द स्वामी की टीकायें भी गम्भीर तान्त्रिक साधना के रहस्यों को प्रकट करने में मुख्य हैं। अभी हाल में ही श्री विष्णुतीर्थ स्वामी की बनाई हुई एक हिन्दी टीका योगपक्ष के प्रतिपादन करनेवाली देखने में आई है।

प्रस्तुत 'सार्थ सौन्दर्य-लहरी' के टीकाकार श्री १०८ बाबा मोतीलाल जी महाराज हैं, जिनका परिचय भारतवर्ष के सभी शाक्तों को सुविदित है। आपने सौन्दर्य-लहरी के एकशत श्लोकों से शताक्षरी रहस्य विद्या को प्रति श्लोकों से प्रकट करने के लिए यह श्रम स्वीकार कर साधना क्षेत्र में एक अत्यन्त उपयोगी वस्तु प्रदान की है। सौ श्लोकों के इस अपूर्व ग्रन्थ से १०० बीजमन्त्रों से अधिक बीजों का उद्धार करके उनका अनुष्ठान क्रम, त्रिकोणादि पूजन-यन्त्र एवं बीज मन्त्रों का ध्यानादि प्रति श्लोकों में निबद्ध किया है। टीका की भाषा सुन्दर भावमयी है। जहाँ कहीं श्लोक में पौराणिक कथाओं का निर्देश हुआ है, टीका में उसका वैज्ञानिक अर्थ

सुसंगत रूप से किया गया है। श्री बाबा जी की लेखनी से प्रसूत इन तत्त्वों का आविष्कार परम प्रामाणिक रूप से अङ्गीकार कर साधना करने से सिद्धिलाभ अवश्यम्भावी है।

श्री कविराज की टीका में भी प्रत्येक श्लोक से बीज तथा मन्त्रों को उद्धृत किया गया है और मूल श्लोक के सदृश ही टीकाकार ने भी एक श्लोक अपना बना कर लिखा है। परन्तु इस टीका में किसी साधना-क्रम का निर्देश नहीं है। सार्थ सौन्दर्य-लहरी में यह त्रुटि दूर कर साधना का प्रशस्त मार्ग दिखलाया गया है। इसमें श्रीचक्र-यजन, आवरण-पूजन, श्री भगवती की रश्मियों का वर्णन, तत्त्वों की कलाओं का वर्णन स्पष्ट रूप से किया गया है। इनसे टीका का स्वरूप विशद हो गया है।

श्लोक ९ एवं १० में षट्चक्रों के निरूपण-क्रम में श्री कुण्डलनी महाशक्ति के आरोह और अवरोह भूमिका के वर्णन में आचार्य स्वामी ने मूलाधार के बाद मणिपूर का जो उल्लेख किया है, वह इसमें छोड़ दिया गया है क्योंकि योग ग्रन्थों में तथा सभी तान्त्रिक पद्धतियों में मूलाधार के बाद स्वाधिष्ठान का ही उल्लेख मिलता है। जगद्विजयी रामकवि ने अपनी संस्कृत टीका में इस विषय की संगति लगाई है, जिसका शब्दार्थ यह है—'मणिपूर शब्द यद्यपि नाभिचक्र में व्यवहृत होता है तथापि परस्पर सामीप्य होने से मणिपूर के स्थान में स्वाधिष्ठान और स्वाधिष्ठान के स्थान में मणिपूर का व्यवहार किया गया है जैसे मधु-माधव महीनों का परस्पर व्यवहार होता है। यद्यपि यह प्रयोग आचार्य का अप्रसिद्ध है तथापि प्रामाणिक चूडामणि भगवान् शंकराचार्य के प्रयोग के इस प्रकार के निर्देश को प्रमाण ही मानना चाहिए।' श्री नरसिंह ठक्कुर ने भी अपनी संस्कृत टीका में इस विषय को इस प्रकार

लिखा है—'शान्तनवाचार्य के मतानुकूल स्वाधिष्ठान और मणिपूर की संज्ञा-व्यत्यय है' अर्थात् स्वाधिष्ठान को मणिपूर और मणिपूर को स्वाधिष्ठान संज्ञा दी गई है। यह शान्तनवाचार्य कदाचित् वही हैं, जिनकी सप्तशती पर टीका है और व्याकरण में फिट् सूत्र के यही रचयिता भी हैं। इसलिए सार्थ सौन्दर्य-लहरी में ३० वें, ४० वें श्लोकों का जो क्रम-परिवर्तन किया गया है, उसकी आवश्यकता नहीं रह जाती।

मूल ग्रन्थ पर एक दूसरी आशंका यह भी की जाती है कि ४२ वें श्लोक से आरम्भ करके अन्त तक जो वर्णन किया गया है, वह कवि सम्प्रदाय से विपरीत है क्योंकि देवता के चरण से आरम्भ करके शिखा-पर्यन्त वर्णन करने की कवि-रीति है, परन्तु आचार्य ने पहले 'गतैर्माणिक्यत्वं' इत्यादि श्लोक से मुकुट-वर्णन से आरम्भ करके चरण के वर्णन में समाप्त किया है। इसका समाधान समयाचार का साधना क्रम है क्योंकि इस मत में शक्ति का चिन्तन सहस्रार से करते हुए क्रम से आज्ञा, विशुद्ध, अनाहत, मणिपूर, स्वाधिष्ठान और मूलाधार में समाप्त होता है। वैसा ही षट्चक्रों का निरूपण-क्रम 'तवाज्ञाचक्रस्थम्' इत्यादि श्लोकों से सहस्रार के पश्चात् आज्ञा से आरम्भ करके मूलाधार में समाप्त किया है। इस विषय पर तर्क-वितर्क की गुञ्जाइश रहते हुए भी उक्त आशंका के लिए इस समाधान को स्वीकार करना ही है।

प्रस्तुत टीका अनेक रहस्यों से पूर्ण है, पाठक अध्ययन द्वारा स्वयं जान सकेंगे। श्री बाबा जी का यह प्रसाद श्रद्धा एवं भक्ति से ग्रहण करना चाहिए।

ॐ शम्
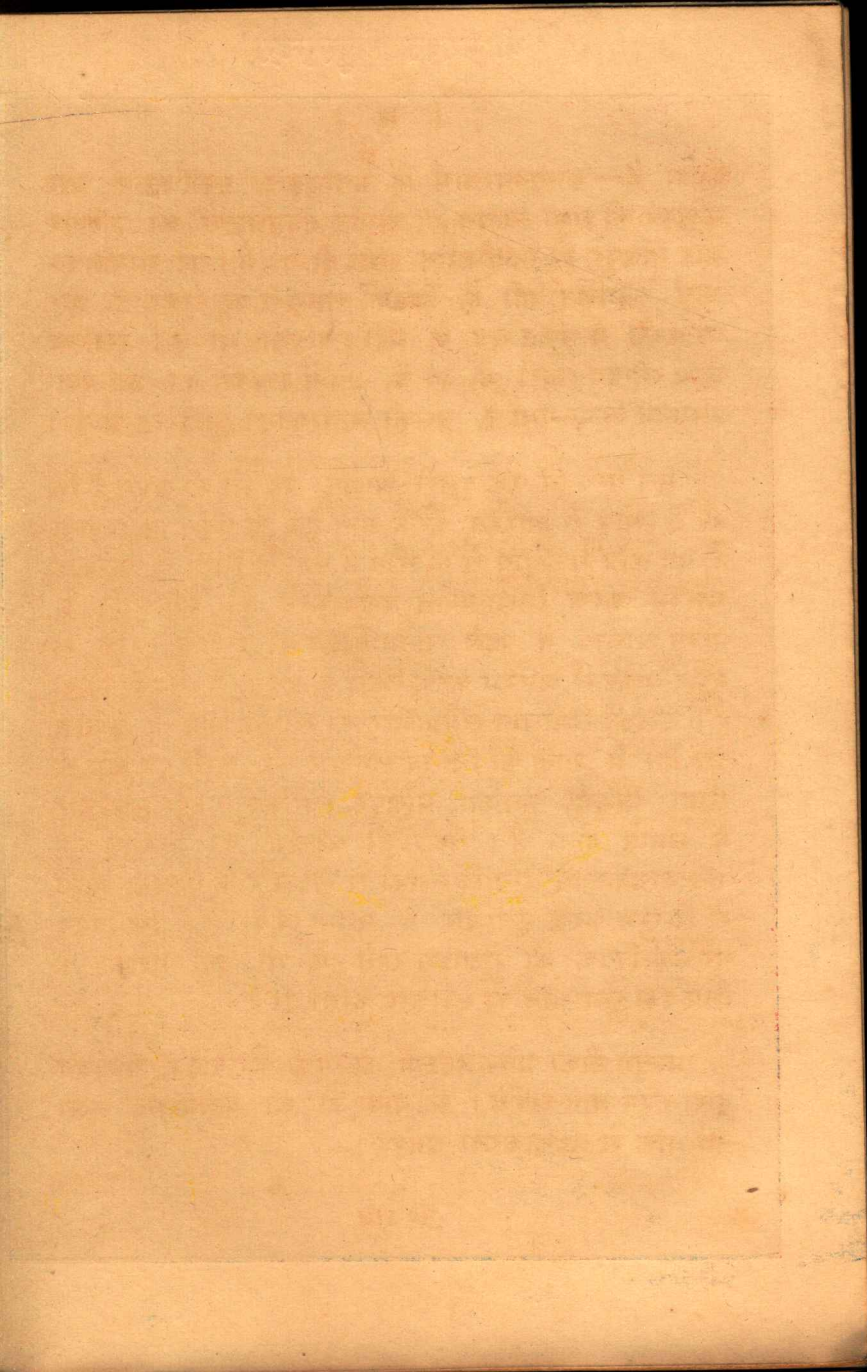
श्री भगवती त्रिपुरसुन्दरी
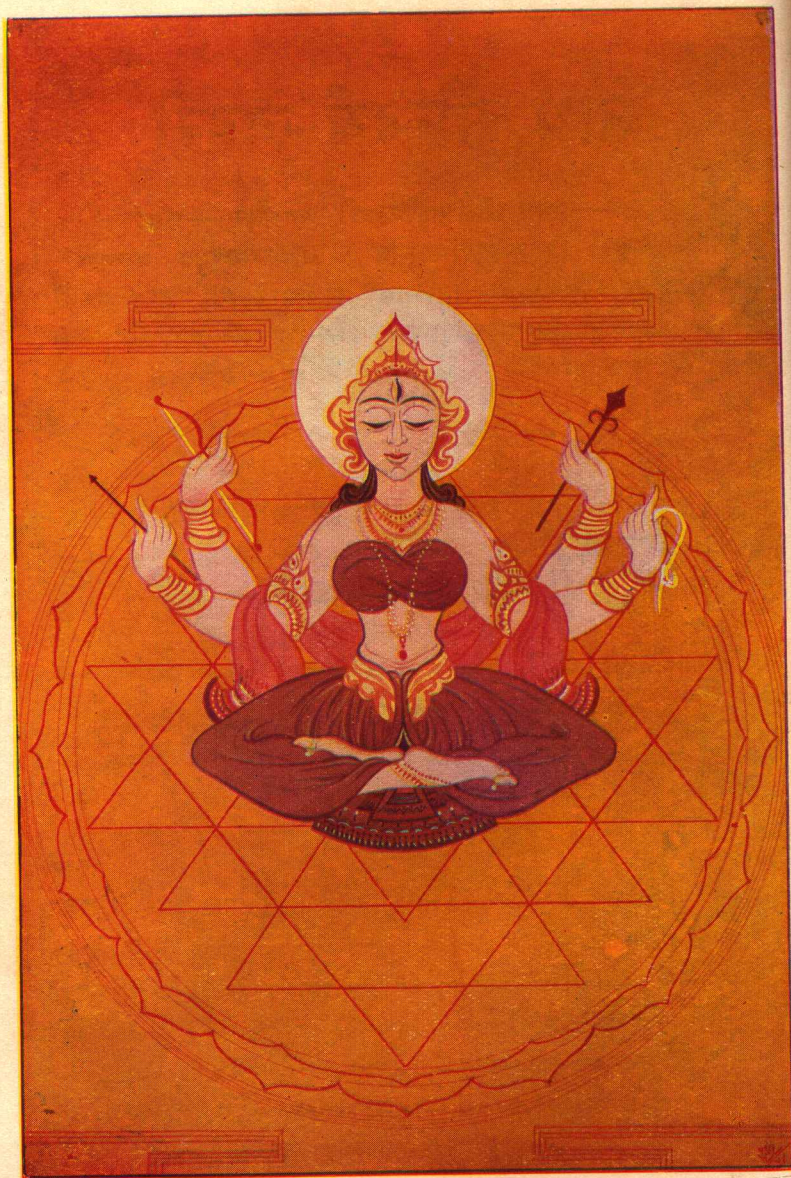
सार्थ सौन्दर्य-लहरी

विनियोग—अस्य श्री त्रिपुरसुन्दरी महाविद्या—शताक्षरी—बीजमन्त्राणां ईशानभैरवो ऋषिः, गायत्र्यनुष्टुप् छन्दसी, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी देवता, शिवः शक्त्या युक्तः इति वीजं, चतुर्वर्गदायिनी विश्वादिमहामाया शक्तिः, ॐ श्रां ह्रीं कीलकं, मम सर्वविद्यासिद्ध्यर्थं चतुर्वर्गाप्तये सर्वदुःखनिवृत्यर्थं च जपे विनियोगः।

ह्रां इति षड्दीर्घवर्णैः षडङ्गं करन्यासश्च।

ध्यानं— लौहित्यनिर्जितजपाकुसुमानुरागां ।
पाशांकुशौ धनुरिषूनपि धारयन्तीम् ॥
ताम्रेक्षणामरुणमाल्यविशेषभूषां ।
ताम्बूलपूरितमुखीं त्रिपुरां नमामि ॥

पञ्चोपचार-पूजन—

लं पृथिव्यात्मने गन्धं कल्पयामि नमः।
हं आकाशात्मने पुष्पं ,, ,,
यं वाय्वात्मने धूपं ,, ,,
रं वन्ह्यात्मने दीपं ,, ,,
वं जलात्मने नैवेद्यं ,, ,,

१ वर्णवीज-ध्यानं—शि = श + इ

श्— चतुर्भुजां चकोराक्षीं चारुचन्दनचर्चितां।
शुक्लवर्णां त्रिनयनां वरदां च शुचिस्मितां ॥
रत्नालङ्कारभूषाढ्यां श्वेतमाल्योपशोभितां।
देववृन्दैरभिवन्द्यां सेवितां मोक्षकांक्षिभिः ॥

शकारं परमेशानि शृणु वर्णं शुचिस्मिते ।
रक्तवर्णं प्रभाकारं स्वयं परम कुण्डली ॥
चतुर्वर्गप्रदं देवि शकारं ब्रह्मविग्रहं ।
पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणात्मकं प्रिये ॥
रजःपञ्चतमोयुक्तं त्रिकूटसहितं सदा ।
त्रिशक्तिसहितं वर्णं आत्मादितत्त्वसंयुतं ॥

इ— इकारं परमानन्दं सुगन्धं कुंकुमच्छविः ।
हरिब्रह्ममयं वर्णं सदाशिवमयं प्रिये ॥
महाशक्तिमयं देवि गुरुब्रह्ममयं तथा ।
विश्वत्रयमयं वर्णं परब्रह्मसमन्वितं ॥
ऊर्ध्वाधः कुब्जितामध्ये रेखा तत्सङ्गता भवेत् ।
लक्ष्मीर्वाणी तथेन्द्राणी क्रमात्तास्वेव संवसेत् ॥
धूम्रवर्णां महारौद्रीं पीताम्बरयुतां पराम् ।
कामदां सिद्धिदां सौम्यां नित्योत्साहविवर्द्धिनीं ॥
चतुर्भुजां च वरदां हरिचन्दनभूषिताम् ।
एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपां मन्त्रं तु दशधा जपेत् ॥

पूजन-यन्त्र—

बीजाक्षर—'शि'; जप—१०००; जप-स्थान—मूलाधार चक्र के चार दलों में; होम—रक्तपुष्प, बिल्व, तिल और यवों* से १०० या १० आहुतियाँ; मार्जन—१०; तर्पण—१०; श्लोक-पाठ-संख्या—१०; श्लोक-पाठ की आहुति—१ ।

---
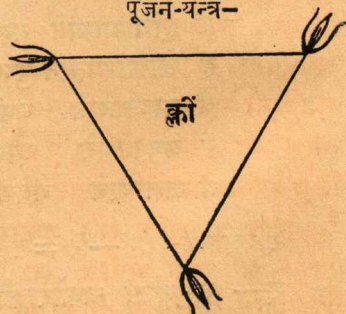
* साकल्य में घृत अवश्य मिलाना चाहिए । बिना घृत साकल्य शुद्ध नहीं होता । यह प्रकार साधारण होने से प्रत्येक स्थान में नहीं लिखा गया ।

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं ।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ॥
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरञ्च्यादिभिरपि ।
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति ॥१॥

भावार्थ—हे प्रभु ! हे विश्वनायक, तू सदा शक्तिमय ही है। यदि तू शक्तिरहित होता तो इकार-रहित शिव अर्थात् शववत् होता तथा विश्वक्रिया का स्पन्द कहाँ और किस प्रकार होता। विश्वदृश्य दर्शनाधारा शुद्ध चैतन्य प्रस्फुरिता दिव्यशक्ति ही है। अतः वह परपरा महामाया कामकूट सिद्धिदा पूर्णकामा कामस्वरूपा हरिहरविरंचिवरदा सर्वदेववृन्दैरभिवन्द्या ही इस विश्व में आराध्य या आराधना करने योग्य है। उत्पत्ति-स्थिति-संहारात्मिका महाशक्तिपरा हे अनन्तशक्ति ! तेरे अनन्त गुणों का गान करने तथा तेरे अमोघ चरणवन्दन का सौभाग्य अकृतपुण्यानधिकारी को किस प्रकार प्राप्त हो सकता है ? "कुशलः स्पन्दितुमपि" कु—सूक्ष्मपरवासः कैलाशः; श (स) सूर्यो आदित्यः; ल—भू—अर्थात् सूक्ष्म-पर निवास श्री कैलाश-व्यापिनी सूक्ष्मतरा गति शक्ति, सूर्यरश्मि प्राणज्योति आदि में गतिस्पन्द उत्पन्न हो सृष्टिक्रम प्रारम्भ नहीं हो सकता। यहाँ शिव-शक्ति-संयोग से पञ्चदशी महामन्त्र विद्या की उत्पत्ति बताई है—शिवो ह, शक्ति स। हकार तथा सकार के संयोग बिना देवः—'क' तथा भूबीज 'ल' से मन्त्रसृष्टि नहीं हो सकती। शिव-शक्ति-संयोग से ही कामकूट की सृष्टि हुई है। ह शिवात्मक, स शक्त्यात्मक, क देवात्मक, ल भ्वात्मक, दिव्य तथा भू के मध्य आकाश व्यापक होने से आकाशबीज मध्यस्थ हुआ—इससे 'हसकहल' यह रूप मन्त्र का बन गया। हरिहरविरञ्चि-

सेविता महामाया बीज 'ह्रीं'-सहित द्वितीय मन्त्रकूट 'हसकहल ह्रीं' बनता है—यह हादि विद्या है। इसमें शक्तित्रय (इच्छा, ज्ञान, क्रिया) लक्ष्य से मायाबीज त्रिपुटित हो जाता है, प्रत्येक मन्त्रकूट के साथ में एक एक।

२ ध्यान—त—चतुर्भुजां महाशान्तां महामोक्षप्रदायिनीं।
सदा षोडशवर्षीयां रक्ताम्बरधरां पराम्॥
नानाऽलङ्कारभूषां वा सर्वसिद्धिप्रदायिनीं।
एवं ध्यात्वा तकारं तु मन्त्ररूपं सदा यजेत्॥
तकारं चञ्चलापाङ्गि स्वयं परमकुण्डली।
पञ्चदेवात्मकं वर्णं पञ्चप्राणात्मकं तथा॥
त्रिशक्तिसहितं वर्णं आत्मादितत्वसंयुतं।
त्रिबिन्दुसहितं वर्णं पीतविद्युत्समप्रभं॥

बीजाक्षर—'त'; जप—१०००; जप-स्थान—मूलाधार चक्र; होम—रक्तपुष्प, बिल्व, तिल और यवों से १०० अथवा १० आहुतियाँ; मार्जन—१०; तर्पण—१०; श्लोकपाठ-संख्या—१०; श्लोकपाठ-आहुति—१; पूजा-यन्त्रम्—त्रिकोण उसके मध्य में 'ह्रीं'।

तनीयांसं पांशुं तव चरणपंकेरुहभवं।
विरञ्चिः संचिन्वन् विरचयति लोकानविकलम्॥
वहत्येनं शौरिः कथमपि सहस्रेण शिरसां।
हरः संक्षुभ्यैनं भजति भसितोद्धूलनविधिम्॥२॥

भावार्थ—चरण-भाव गति लक्ष्य का है। श्री महामाया परमा शक्ति की अद्भुत स्पन्दगति विद्याऽविद्या-रूप धारण करती है। उसके गति-विक्षेप में अणवणुओं की सृष्टि होकर उनसे सूर्यादि बन जाते हैं; फिर भ्वादि गोलक ग्रहों की सृष्टि

होती है तथा उनमें वर्तमान दृश्य तत्त्वों का निर्माण होकर विश्व-जीवन-सृष्टि प्रारम्भ होती । वे अणवणु सदा बनते बिगड़ते रहते श्री विरञ्चि को उनके सर्जन में तनिक भी प्रयास करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। ये सभी ग्रहलोक श्री सौर महाशक्ति के गुरुत्वाकर्षण (ग्रेविटी) में अधर में लटकते हुए भ्रमण करते हैं तथा सूर्य की प्रदक्षिणा करते अर्थात् श्री सौरशक्ति भू-सहित इस सम्पूर्ण ग्रहमण्डल को सहस्रों माथों से धारण करती हुई भी स्वयं गतियुक्त है। इस बृहत्सृष्टि में लय होते हुए अणुओं की अणवाणुभस्म श्री सदाशिव धारण कर उन अणवाणुओं में पुनः जीवन-गति सम्प्रदान करते हैं। यह श्री भगवान् महाशिव का मृत्युञ्जय योग है।

३ ध्यान—अ—केतकीपुष्पगर्भाभां द्विभुजां हंसलोचनां।
शुक्लपट्टाम्बरधरां पद्ममालविभूषिताम्॥
चतुर्वर्गप्रदा नित्यं नित्यानन्दमयी परां।
वराभयकरां देवीं नागपाशसमन्वितां॥
शृणु तत्त्वमकारस्य अतिगोप्यं वरानने।
शरच्चन्द्रप्रतीकाशं पञ्चकोणमयं सदा॥
पञ्चदेवमयं वर्णं शक्तिद्वयसमन्वितं।
निर्गुणं सगुणोपेतं स्वयं कैवल्यमूर्तिमान्॥
बिन्दुद्वयमयं वर्णं स्वयं प्रकृतिरूपिणी।

बीजाक्षर—'अ', जप—१०००, जप-स्थान—मूलाधार चक्र; होम—रक्तपुष्प, बिल्व, तिल और यवों से १०० अथवा १०, मार्जन—१०; तर्पण—१०, श्लोक-पाठसंख्या—१०; श्लोकपाठ-आहुति—१; पूजायन्त्रम्—त्रिकोण उसके मध्य में 'श्रीं'।

अविद्यानामन्तस्तिमिरमिहिरद्वीपनगरी ।
जडानां चैतन्यस्तवकमकरन्दस्रुतिझरी ॥
दरिद्राणां चिन्तामणिगुणनिका जन्मजलधौ ।
निमग्नानां दंष्ट्रा मुररिपुवराहस्य भवती ॥३॥

भावार्थ—अविद्या-रूप अन्धकारमय महासागर में, हे मां ! तुम काशमय द्वीप हो; अनन्त सूर्यरूप से प्रकाश देनेवाली हो; तम से भरे हुए जीवों के मन में विज्ञान-ज्योति देनेवाली हो। रस-रहित शून्य जड़रूप ऊसर में आप रसमय पुष्प-पराग (मधु) का झरना हो; आपकी दया से ही शुष्क जीवन-क्षेत्र आप्यायित हो शान्त्याराम की सुरम छाया का अनुभव करता है। हे मां ! आप दरिद्रियों के लिए चिन्तामणि की दिव्य माला हो। हे विश्वहितकारिणी भगवति ! वराह-रूप हरि ने महान्धकार-सागर में डूबती हुई पृथ्वी को जिस प्रकार अपने दन्ताग्र-भाग में धारण कर हिरण्याक्ष को मार कर डूबते हुए विश्वजीवों का संरक्षण किया था, उसी प्रकार इस जन्म-मरण-रूप महाव्याधि-सागर में डूबते हुए संसार के जीवों का आप उद्धार करनेवाली हो।

श्री कैवल्याश्रम स्वामी ने इस श्लोक को कामराजमातृका भाव में कहा है तथा 'आदिस्वर' अकार (जिससे यह श्लोक प्रारम्भ होता है) से ईकार की और अ + ई सम्बन्ध से वाग्बीज की उत्पत्ति बताई है। किसी किसी टीकाकार ने 'मिहिर' शब्द का अर्थ द्वादशादित्य किया है। द्वादश सूर्यों के नाम ये हैं—

१ धातृ, २ मित्र, ३ अर्यमा, ४ रुद्र, ५ वरुण, ६ सूर्य, ७ भग, ८ विवस्वत, ९ पूषा, १० सवितृ, ११ त्वष्ट्रा और १२ विष्णु।

४ ध्यान—त्व=त्+व। 'त' बीज का ध्यान पृष्ठ ४ पर दिया है। 'व' का ध्यान इस प्रकार है—

व— कुन्दपुष्पप्रभां देवीं द्विभुजां पङ्कजेक्षणाम्।
शुक्लमाल्याम्बरधरां रत्नहारोज्ज्वलां परां॥
साधकाभीष्टदां सिद्धां सिद्धिदां सिद्धसेवितां।
एवं ध्यात्वा वकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्॥
वकारं चञ्चलापाङ्गि कुण्डलीमोक्षमव्ययं।
पञ्चप्राणमयं वर्णं त्रिशक्तिसहितं सदा॥
त्रिबिन्दुसहितं मन्त्रमात्मादितत्त्वसंयुतं।
पञ्चदेवमयं वर्णं पीतविद्युल्लतामयं॥
चतुर्वर्गप्रदं शान्तं सर्वसिद्धिप्रदायकं।

बीजाक्षर—'त्व'; जप—१०००; जप-स्थान—मूलाधार; होम—रक्तपुष्प, बिल्व, तिल और यवों से १०० या १०; मार्जन—१०; तर्पण—१०; श्लोकपाठ-संख्या—१०; श्लोकपाठ-आहुति—१; पूजन-यन्त्र—त्रिकोण उसके मध्य में 'श्रीं'।

त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगण—
स्त्वमेका नैवासि प्रकटितवराभीत्यभिनया।
भयात्त्रातुं दातुं फलमपि च वाञ्छासमधिकं,
शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ॥४॥

भावार्थ—हे मा! समस्त विश्व आपके चरण-रज (गति भाव) से उत्पन्न हुआ है। सब देवता भी उसी दिव्य चरण-रज से उत्पन्न हुए हैं। सब देव विश्व के भयातुर शरणागतों को वराभय देनेवाले हैं, आप श्री के तो चारों हाथ पाशांकुश, इक्षु, चाप, बाणादि से अलंकृत हैं। विश्व-त्रिताप से

भयभीत शरणागतों को वराभय देने के लिए आप श्री का एक भी हाथ खाली नहीं! आवश्यकता ही क्या है? आपके श्री चरणकमल अन्य देवता-प्रद वराभय से भी अधिक काम कर रहे हैं। जिन पूज्य पादाब्जों के रजकण से अनन्त विश्व तथा विश्वदैवत की सृष्टि हुई है, वे श्री चरण अनन्तानन्त विश्व-जीवों के कल्याण करने में स्वयं समर्थ हैं। जब आप श्री के चरण-कमल भक्तों को वांछित से अधिक फल दे रहे हैं तब आपको वराभयहस्त की आवश्यकता ही क्या है! कोई देवता अपने साधक को भोग-कामादि देता है तो कोई मोक्ष, परन्तु आपके श्रीचरण तो चतुर्वर्ग तथा ईश्वरत्व को देनेवाले ।

५ ध्यान—ह—चतुर्भुजां रक्तवर्णां शुक्लाम्बरविभूषितां।
रक्तालङ्कारसंयुक्तां वरदां पद्मलोचनां॥
ईषद्धास्यमुखीं लोलां रक्तचन्दनचर्चितां।
स्याद्दात्रीं च चतुर्वर्गप्रदां सौम्यां मनोहरां॥
गन्धर्वसिद्धदेवाद्यैर्ध्यातां आद्यां सुरेश्वरीं।
एवं ध्यात्वा हकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्॥
हकारं शृणु चार्वङ्गि चतुर्वर्गप्रदायकं।
कुण्डलीद्वयसंयुक्तं रक्तविद्युल्लतोपमं ।
रजस्सत्वतमोयुक्तं पञ्चदेवमयं सदा।
पञ्चप्राणात्मकं वर्णं त्रिशक्तिसहितं सदा॥
त्रिविन्दुसहितं वर्णं हृदि भावय पार्वति।
ऊर्ध्वादाकुंचिता मध्ये कुण्डलीत्वगता त्वधः॥
ऊर्ध्वं गता पुनस्सैव तासु ब्रह्मादयः क्रमात्।

बीजाक्षर—'ह'; जप—१०००; जप-स्थान—मूलाधार चक्र; होम—रक्तपुष्प, बिल्व, तिल और यवों से १०० अथवा १०; मार्जन—

१०; तर्पण—१०; श्लोकपाठ-संख्या—१०; श्लोकपाठ-आहुति—१;
पूजनयन्त्र—त्रिकोण उसके मध्य में 'ह्रुं'।

हरिस्त्वामाराध्य प्रणतजनसौभाग्यजननीं,
पुरा नारी भूत्वा पुररिपुमपि क्षोभमनयत्।
स्मरोऽपि त्वां नत्वा रतिनयनलेह्येन वपुषा,
मुनीनामप्यन्तः प्रभवति हि मोहाय महताम् ॥५॥

भावार्थ—हे प्रणतजन-सौभाग्य-जननि, हे मां! तेरे इस दिव्य महापञ्चाक्षरी श्री स्वरूप की आराधना के प्रभाव से प्राचीन काल में श्री महाविष्णु स्त्री-रूप धारण कर त्रिपुरारि महापुरुष भगवान शिव को क्षोभित (मोहित) करने में समर्थ हुए थे। तेरे इस महामन्त्र की आराधना से भगवान् मन्मथ श्रीरतिनाथ कामदेव रतिनेत्र-चुम्बनयुक्त मनोहारिणी शक्ति से बड़े-बड़े तपस्वी महामुनियों के मन में कामविकार जगा कर उन्हें मोहित कर देता है।

श्री स्वामी अच्युतानन्दाचार्य ने इस श्लोक में साध्य सिद्धासन विद्या बताई है। क्लीं ब्लें (ब्लूं; चतुरासन न्यास का चतुर्थ भाग)—हरि में से हर, स्मर कामबीज क्लीं, जननी—ईं, लेह्य का ल, मुनि का ँ, आदि······

६ ध्यान-ध—षड्भुजां मेघवर्णां च रक्ताम्बरधरां परां।
वरदां शुभदां रम्यां चतुर्वर्गप्रदायिनीं ॥
एवं ध्यात्वा धकारं तु मन्त्रं च दशधा जपेत्।
त्रिकोणरूपरेखायां त्रयो देवा वसन्ति च।
विश्वेश्वरी विश्वमाता विश्वधारिणीति च ॥

बीजाक्षर—'ध'; जप-संख्या—१०००; जप-स्थान—मूलाधार चक्र; होम—रक्तपुष्प, बिल्व, तिल और यवों से १०० अथवा १०; मार्जन—१०; तर्पण—१०; श्लोकपाठ-संख्या—१०; श्लोक-पाठ आहुति—१।

पूजन-यन्त्र—
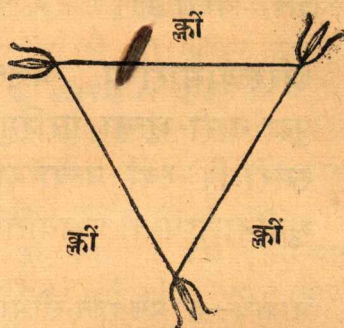
धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी पञ्चविशिखाः,
वसन्तः सामन्तो मलयमरुदायोधनरथः।
तथाप्येकः सर्वं हिमगिरिसुते कामपि कृपा-
मपाङ्गात्ते लब्ध्वा जगदिदमनङ्गो विजयते ॥६॥

भावार्थ—हे मा! तेरे कृपाकटाक्ष से एक क्षुद्राणु भी पूर्णव्यापक महाशक्ति बन सकता है। देखो, जगद्विजेता श्री महाभैरव भगवान् श्री मकरध्वज को आप श्री की कृपा से कैसी अद्भुत अमोघ शक्ति प्राप्त हुई है। उन श्री कामदेव का भ्रमर की प्रत्यञ्चावाला धनुष पुष्पों से बना हुआ है; केवल पाँच बाण ही त्रोण में हैं; अकेला वसंत ही साथी (सेनापति) है; शीतल मन्द मलय पवन ही युद्ध का रथ है; तो भी अकेले श्री कामदेव ने इस अखिल विश्व को विजय किया है। हे प्रशान्त महागिरि की शान्तिमयी कन्ये, हे मा! यह सब तेरे कृपा-कटाक्ष का फल है। इसी से श्री भगवान् मदन श्री प्रस्तार चक्र के स्वामी हैं।

७ ध्यान—'क्व'=क्+व। 'व' बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ७ पर दिया है। बीज 'क' का ध्यान इस प्रकार है—

क— जवायावकसिन्दूरसदृशीं कामिनीं परां।
चतुर्भुजां त्रिनेत्रां च बाहुवल्लीविराजितां॥
कदम्बकोरकाकारः स्तनयुग्मविराजितां।
रत्नकङ्कणकेयूरहारनूपुरभूषितां॥
एवं ककारं ध्यात्वा तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
शङ्खकुन्दसमा कीर्तिर्मात्रा साक्षात्सरस्वती॥
कुण्डली चांकुशाकारा कोटिविद्युल्लताकृतिः।
कोटिचन्द्रप्रतीकाशो मध्ये शून्यः सदाशिवः॥
शून्यगर्भस्थिता काली कैवल्यपददायिनी।
अर्थश्च जायते देवि तथा धर्मश्च नान्यथा॥
ककारः सर्ववर्णानां मूलप्रकृतिरेव च।
कामिनी या महेशानि स्वयं प्रकृतिसुन्दरी॥
माता सा सर्वदेवानां कैवल्यपददायिनी।
ऊर्ध्वकोणे स्थिता वामा ब्रह्मशक्तिरितीरिता॥
वामकोणे स्थिता ज्येष्ठा विष्णुशक्तिरितीरिता।
दक्षकोणे स्थिता शक्तिः श्रीरौद्री संहाररूपिणी॥
ज्ञानात्मा सा तु चार्वङ्गी चतुःषष्ट्यात्मकं कुलं।
इच्छाशक्तिर्भवेद्ब्रह्मा (दुर्गा) विष्णुश्च ज्ञानशक्तिमान्॥
क्रियाशक्तिर्भवेद्रुद्रः सर्वप्रकृतिमूर्तिमान्।
आत्मविद्याशिवैस्तत्वै पूर्णा मात्रा प्रतिष्ठिता॥
आसनं त्रिपुरा देव्याः ककारः पञ्चदैवतः।
ईश्वरो यस्तु देवेशि त्रिकोणे तस्य संस्थितः॥
त्रिकोणमेतत्कथितं योनिमण्डलमुत्तमं।
कैवल्यं प्रपदे यस्याः कामिनी सा प्रकीर्तिता॥
एषा सा कादिविद्या चतुर्वर्गफलप्रदा।

बीजाक्षर—'क'; जप-संख्या—१०००; जप-स्थान—मूलाधार; होम—रक्तपुष्प, बिल्व, तिल और यवों से १०० या १०; मार्जन—१०; तर्पण—१०; श्लोकपाठ-संख्या—१०; श्लोकपाठ आहुति—१; पूजन-यन्त्र—त्रिकोण उसके मध्य में 'ह्रीं'।

क्वणत्काञ्ची दामा करिकलभकुम्भस्तननता।
परिक्षीणा मध्ये परिणतशरच्चन्द्रवदना॥
धनुर्बाणान्पाशं सृणिमपि दधाना करतलैः।
पुरस्तादास्तां नः पुरमथितुराहोपुरुषिका॥७॥

भावार्थ—हे मा! विश्वव्यापिनी कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्था हे श्री जगदम्ब! अनेक ब्रह्माण्ड-रूप घुँघरुओं से बनी मधुर शब्दयुक्त यह करधनी आपकी ललित कटि में बँधी हुई है। बाल हाथी के गण्डस्थलवत् मध्य में क्रमक्षीण आपके स्तन (विश्वपोषिणी शक्ति) भक्तों को पिलाने के लिये स्तोक झुके हुये हैं। आपका श्री मुख अनन्त कोटि शरच्चन्द्र श्री के समान परम शान्ति भरा हुआ है। आपकी चतुर्भुजाओं में इक्षुधनुपाशांकुश तथा बाण दुष्टदमिनी भक्तरक्षिणी आपकी अनिर्वचनीय शोभा को बढ़ा रहे हैं। हे त्रिपुरारि, महाशिव परमेश्वर पर आवरण डालनेवाली महामाया पुरुषिका! तेरी दया से हमें तेरा साक्षात्कार हो। तेरी ब्रह्माण्डमयी कटि-किङ्किणि की मधुर ध्वनि तेरे साधकों तथा प्रेमी भक्तों को मायावरण के विचित्र कण्टकयुत गर्तों से बचने के लिये चेतावनी देनेवाली हो। श्री मा के नीचे के वामहस्त में भ्रमर प्रत्यञ्चावाला इक्षु धनु (विवेक-बुद्धि) है। कमल, रक्तकैरव (करवीर), कल्हार, इन्दीवर तथा सहकार पुष्प निर्मित पञ्चबाण हैं। ये पञ्चबाण (पञ्चतन्मात्रा) नीचे

के दक्ष कर में हैं। ऊपर के वामकर में पाश (मन) है। ऊपर के दक्षिण कर में अंकुश (बुद्धि) है।

इन शस्त्रों का गुप्त भाव तीन प्रकार का है—१ स्थूल (गुणमय), २ सूक्ष्म (मन्त्रमय) और ३ पर (वासनामय)। शस्त्रों का गुणमय स्थूल रूप ऊपर बताया है। शेष दो रूप इस प्रकार हैं—

मन्त्रमय—१ धनुष=स्वाहा ठः ठः, २ बाण=द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः, ३ अंकुश=क्रों, ४ पाश=ह्रीं।

वासनामय--१ धनुष=मोक्ष, २ बाण=काम, ३ पाश=अर्थ, ४ अंकुश=धर्म।

इस श्लोक के बीज 'क्व' का भाव अत्यन्त रहस्यमय तथा मोक्षद है। प्रत्येक प्रकार की आपत्ति से दूर करनेवाले इस मन्त्र का २२५ अनुष्ठान-पुरश्चरण सर्वसिद्धियों को देनेवाला है। इस श्लोक में से वशीकरण बीज 'ब्लूं' की उत्पत्ति बताई है। यथा—बाणान् में से 'ब', करतल में से 'ल', पुरमथितुः में से 'उ' और पौष्पं में से 'बिन्दु'।

चन्द्र का अर्थ है--अर्द्धमात्रा-बिन्दु। बिन्द्वावरण द्वितीया का चन्द्र शिव तथा मा के मस्तक पर बताया है। बिन्द्वावरण का अर्थ है, जिसमें से बीजमन्त्रों का विस्फुरण हो। तृतीय नेत्र का अर्थ है--मूलाग्नि, लयात्मिका पृथक्कीकरण शक्ति।

८ ध्यान—सु=स्+उ।

स्—करीषभूषिताङ्गीं च साट्टहासां दिगम्बरीं।
अस्थिमाल्यामष्टभुजां वरदामम्बुजेक्षणाम्॥
नागेन्द्रहारभूषाढ्यां जटामुकुटमण्डिताम्।
सर्वसिद्धिप्रदां नित्यां धर्मकामार्थमोक्षदां॥

एवं ध्यात्वा सकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ।
सकारं शृणु चार्वङ्गि शक्तिबीजं परात्परं ।
कोटिविद्युल्लताकारं कुण्डलीमयसंयुतं ॥
पञ्चदेवमयं देवि पञ्चप्राणात्मकं सदा ।
रजसत्वतमोयुक्तं त्रिबिन्दुसहितं सदा ॥
उ—पीतवर्णां त्रिननां पीताम्बरधरां परां ॥
द्विभुजां जटिलां भीमां सर्वसिद्धिप्रदायिनीं ।
एवं ध्यात्वा सुरश्रेष्ठां तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥
उकारं परमेशानि अधः कुण्डलिनी स्वयं ।
पीतचम्पकसङ्काशं पञ्चदेवमयं सदा ॥
पञ्चप्राणमयं देवि चतुर्वर्गप्रदायकं ।

बीजाक्षर—'सु'; जप-संख्या—१०००; जप-स्थान—मूलाधार; होम—रक्तपुष्प, बिल्व, तिल और यवों से १०० या १०; मार्जन—१०; तर्पण—१०; श्लोकपाठ-संख्या—१०; श्लोक-पाठ आहुति—१ ।

पूजन-यन्त्र—
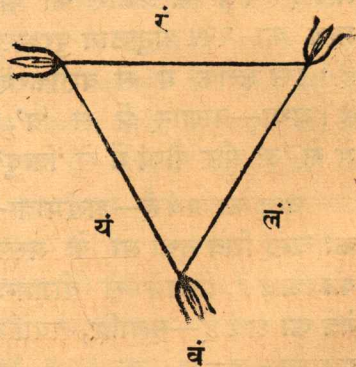
सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते ।
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे ॥
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां ।
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीं ॥८॥

भावार्थ--मणिद्वीप के चारों ओर अमृत का समुद्र है। यह समुद्र वायु-संघटन-योग से बहु दिव्य तरङ्गवाला है। रत्नमयी दिव्य प्रकाशयुक्त रेती उस समुद्र के किनारे फैली हुई है। मणिद्वीप में चार द्वार हैं। वह स्थान अनेक सिद्ध पुरुषों के निवासस्थानों से आवृत है। सहस्रों दर्शनातुरों के विमानों की भीड़ वहाँ लगी रहती है। वहाँ के वृक्ष दिव्य मणियों के दिव्य वृक्ष से दीखते हैं। वहाँ बड़ी सुन्दर वाटिका है। वसन्त इस वाटिका का माली है। सब वृक्ष निरन्तर नव फूल-फल-पल्लव से युक्त रहते हैं। वाटिका आनन्दमय दिव्य सुगन्ध से भरी हुई है। पद्ममणि (पन्ना) के समान हरित भूमि में अनेक सुन्दर रसमय अमृतवारि के झरने प्रस्फुरित होकर मधुर कलरव करते हुए धीरे-धीरे बहते हैं। ऐसे बहुत से झरने श्री मणिद्वीप की प्राकृतिक शोभा को बढ़ाते हुए द्रष्टाओं में महाशान्ति उत्पन्न करते हैं। इन झरनों के जलपान से ब्रह्मानन्द-पीयूष गुण-सहित जागता है। शुक मैना आदि पक्षी तत्त्वविज्ञान-चर्चामय मधुर स्वर से मीठी वाणी बोलते हैं। यह उत्तम वन सुगन्धमय नीरोगकर पवन से भरपूर हितानन्दकर है। विश्वसार इस मणिद्वीप के मध्य में कल्पवृक्ष का आराम है। कल्पवृक्ष की डालियाँ सुवर्णमय कान्तिवाली हैं। यह महादिव्य द्वीप दशावरणवाले श्री चक्र के आकार का है। यथा--

अमृतसागर = भूपुर--आधारचक्रे	ध्यानं
लोह दुर्ग = वृत्तत्रय--स्वाधिष्ठाने	"
कांस्यदुर्ग = षोडशदल पद्म--मणिपूरे	"
ताम्रदुर्ग = अष्टदल--अनाहचक्रे	"
सीसक (प्लेरिनम) दुर्ग = चतुर्दशार--विशुद्धचक्रे	"
रौप्य दुर्ग = बहिर्दशार--आज्ञाचक्रस्य अधोभागे	"
स्वर्ण दुर्ग = अन्तर्दशार— " "	"

सुरविटपवाटी (कल्पवृक्षवन)=अष्टार--आज्ञाचक्रस्य ऊर्ध्वभागे
चिन्तामणिगृह=त्रिकोण (मूलयोनि)--सहस्रारस्य बहिर्भागे
श्री महामाया महाशक्ति-स्थान=बिन्दु—सहस्रारस्य अन्तर्भागे

श्री कल्पवृक्षवन की सुवर्णमय डालियों में रङ्ग-बिरङ्गे रत्न-समान दिव्य पत्र-पुष्प-फलादि लगे हैं। कल्पवृक्ष की इस महासुगन्धित रम्य वाटिका के मध्य में चिन्तामणि की ईंटों से प्रस्तुत महादिव्य महल कोटि बालादित्यवत् प्रकाशमान है। उसके मध्य में शिवाकार-मञ्चस्थ परमशिव-पर्यङ्कासन पर विश्वसुन्दरी पराशक्ति विराजमान है।

हे विश्वधात्री मा! हे चिदानन्दा महाविद्या, हे दिव्यास्तित्व की चिदानन्दमयी दिव्य लहर!!! हे चिद्स्पन्दकारिणी महागतिशक्ति! कचिल्लब्ध वे महापुरुष धन्य हैं, जो सहस्रार के ज्योतिर्मय सुधासिन्धु में पूर्णकामत्व-रूप कल्पवृक्ष-वाटी से घिरे हुए मणिद्वीप में प्रशान्त एकाग्रता की मस्ती के कदम्ब-पवन में कामना-रहित चिन्तामणिगृह में शिवाकार-मञ्च पर परमशिव-पर्यङ्कासनस्था आप श्री का ध्यान तथा स्मरण करते हैं।

"परमशिवपर्यङ्कनिलयां" शिव-शक्ति की एकात्मता का भाव है—शिवो बिन्दुः शक्तिर्नादः। इस श्लोक 'क्लीं' बीजाविर्भाव कहा है। इसका भाव अत्यन्त सुन्दर है।

६ ध्यान--'म'--कृष्णां दशभुजां भीमां पीतलोहितलोचनां।
कृष्णाम्बरधरां नित्यां धर्मकामार्थमोक्षदां॥
एवं ध्यात्वा मकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
मकारं शृणु चार्वङ्गि स्वयं परमकुण्डलि॥
तरुणादित्यसङ्काशं चतुर्वर्गप्रदायकं।
पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं तथा॥

बीजाक्षर—'म'; जप-संख्या—१०००; जप-स्थान—मूलाधार; होम—रक्तपुष्प, बिल्व, तिल और यवों से १०० या १०; मार्जन—१०; तर्पण—१०; श्लोकपाठ-संख्या १०; श्लोकपाठ आहुति–१; पूजन-यन्त्र—
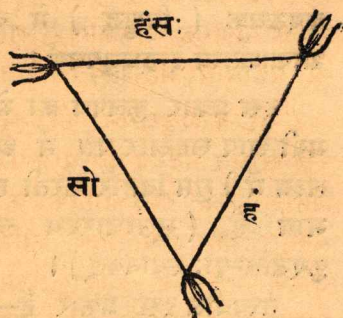
महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं।
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि॥
मनोऽपि भ्रमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं।
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि॥९॥

भावार्थ—हे मा, आपकी परम शक्ति चित्स्पन्दभाव में विश्वसृष्टि की कल्पना कर षट्चक्र वेधभाव में सूक्ष्म तत्त्वों के वेध-द्वारा स्थूल पञ्चतत्त्वों में पञ्चीकरण करती है। यथा—

मूलाधार में भूतत्त्व पीतवर्ण, स्वाधिष्ठान में जलतत्त्व* श्वेतवर्ण, मणिपूर में अग्नितत्त्व रक्तवर्ण (मणिरत्नवर्ण), अनाहत-हृच्चक्र में अग्नि-वायु-मिश्रित तत्त्व गुलाबी वर्ण,

---

* इस श्लोक में श्री शङ्कर भगवत्पाद ने स्वाधिष्ठान में अग्नितत्त्व माना है तथा मणिपूर में अग्नि के स्थान में जलतत्त्व कहा है। सम्भव है, यह मतान्तर हो परन्तु यह प्रकार इस शरीर के कुलयोगानुभव से विपरीत है। अतः इस श्लोक के अर्थ भाव में इस शरीर ने स्वकुल-योगानुभव लक्ष्य ही ग्रहण किया है, श्री स्तवनकार का मत ग्रहण नहीं किया।

कण्ठचक्र (विशुद्ध) में वायुतत्त्व धूम्रवर्ण, आज्ञाचक्र में आकाशतत्त्व इन्द्रधनुषवर्ण।

इस प्रकार कुलपथ का भेद कर पराशक्तिरूपा गुप्त रहस्यमयी आप सहस्रार पद्म में अपने पति के साथ (चिदानन्द लक्ष्य में) गुप्त विहार करती हो। सहस्रार दल से श्रीचक्र का भाव है (मूलाधारस्थ चतुर्दले भूपुरमये शक्तिरूपायाः कुण्डलिन्याः स्थानवत्)।

तत्त्वबीज इस प्रकार हैं—हं आकाशबीज, यं वायुबीज, रं अग्निबीज, वं वरुणबीज, लं भूबीज, मं मनोबीज, षं बुद्धिबीज, सं शक्तिबीज, हं चिद्‌बीज—शिवबीज—प्राणबीज, शं स्वराश्च—जीव बीजादि......

कुलपथ-भेद से पृथ्वी से मनपर्यन्त २१ तत्त्वों का भेदन हो जाता है। २१ तत्त्व=१ पृथ्वी, २ अप्, ३ अग्नि, ४ वायु, ५ आकाश, ६ गन्ध, ७ रस, ८ रूप, ९ स्पर्श, १० शब्द, ११ नासिका, १२ जिह्वा, १३ चक्षु, १४ त्वक्, १५ श्रोत्र, १६ वाक्, १७ पाणि, १८ पाद, १९ पायु, २० उपस्थ, २१ मन।

मन से परे निम्नलिखित तत्त्व हैं—२२ बुद्धि, २३ अहङ्कार, २४ प्रकृति, २५ पुरुष (चित्), २६ कला, २७ अविद्या, २८ विद्या, २९ राग, ३० नियति, ३१ माया, ३२ शिव, ३३ शक्ति।

कोई कोई १५ तत्त्व पृथक् बताते हैं। यथा—

सप्तधातु—१ त्वक्, २ असृज, ३ मांस, ४ मेद, ५ अस्थि, ६ मज्जा और ७ शुक्र।

पञ्चप्राण—१ प्राण, २ अपान, ३ व्यान, ४ उदान और ५ समान।

गुणत्रय—१ सत्व, २ रज और ३ तम।

तत्त्वबीजों का चक्रन्यास इस प्रकार है—

श्रीचक्राङ्ग	तत्त्व	चक्र	तत्त्वबीज
त्रिकोण	आकाश	आज्ञा	हं
अष्टकोण	वायु	विशुद्धि	यं
दशारद्वय	अग्नि + वायु	हृत्	यरं = य्रं
चतुर्दशार	अग्नि	नाभि	रं
अष्टदलपद्म	जल	स्वाधिष्ठान	वं
षोडशदलपद्म	भू	मूलाधार	लं

१० ध्यान—'सु'—इस बीजाक्षर का ध्यान, जपादि पृष्ठ १३-१४ पर दिया है। पूजन-यन्त्र—पृष्ठ १४ पर दिये त्रिकोण के समान, उसमें 'हंसः', 'सो', और 'हं' के स्थान पर क्रमशः 'ऐं', 'ह्रीं' और 'श्रीं' लिखे।

सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः ।
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसा ॥
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं,
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि ॥ १० ॥*

---

* इन दो श्लोकों (६-१०) में कुण्डलिनी-रहस्य-सोपान का वर्णन है। सोपान की उन्नेय भूमिका नवें श्लोक में कही है—श्री महा-कुण्डलिनी शक्ति का जागृत होकर मूलाधार से सहस्रार पर्यन्त उस सूक्ष्म जीवन-तन्तु (कुण्डलिनी) का चढ़ना उन्नेय भूमिका है। इस दसवें श्लोक में प्रत्यावृत्ति भूमिका का वर्णन है। सुषुम्ना में व्यापक होकर फिर कुलकुण्ड (मूलाधार चक्र के ऊपर कुण्डलिनी का स्थान) में वापस आकर साढ़े तीन वलयाकार में कुण्डलिनी का सो जाना प्रत्यावृत्ति भूमिका कहाता है। योगाभ्यास-द्वारा कुण्डलिनी की जाग्रति होकर सुषुम्ना मार्ग से आज्ञाचक्र का उल्लंघन होने के बाद उसका

भावार्थ—हे विश्वजननि ! कुलकुण्ड की अन्तर्गुहा में जब आप साढ़े तीन वलयात्मिका महा विश्व-कुण्डलिनीरूप में शयन करती हो तथा निजानन्द भाव में एकाग्र होकर स्वात्मानन्द के रसाम्नाय-स्वाद में मग्न हो जाती हो तब भी आपके श्री चरण सुधा की तीव्र वर्षा से प्रपंच को सींचते हैं अर्थात् विश्राम-काल में भी आप विश्व का कल्याण करती हो।

हे मा ! विश्राम-काल में भी विश्व के त्रिनाड़ीचक्र में आपका युक्त संचार रहता है, जैसे जीव-देह के निद्राकाल में देह नाड़ियों में रक्त-संचार।

(उत्थित जाग्रत कुण्डलिनी का) पुनः संवरण करना अति कठिन होता है। श्री कुण्डलिनी के जाग्रत होकर सहस्रारगामिनी होने से जीव व्यक्ति का बाह्य स्थूल सम्बन्ध छूट जाता है तथा वह एकाग्र होकर शान्त-प्रशान्त वृत्तियों में क्रमशः मग्न होने लगता है। सहस्रार-गत श्री कुण्डलिनी महाशक्ति का पुनः संवरण यदि साध्यकर हो सके तो ईश्वरत्व की सिद्धि होती है। इस प्रकार की साधना में सिद्ध साधक को भूतत्त्वीकरण, पञ्चीकरणादि हस्तामलकवत् हो जाता है। यह केवल व्यक्ति (स्थूलदेह) गत कुण्डलिनी-साधन-शक्ति है। विश्व कुण्डलिनी-सिद्धा महामाया पराशक्ति का तो कहना ही क्या ! वह अनन्ताद्भुता महाशक्ति शब्दों-द्वारा किस प्रकार वर्णित की जा सकती है ! शिव-महिम्न में कहा ही है—

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे।
सुरतरुवरशाखा लेखिनी पत्रमुर्वी॥
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं।
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥

वह परा नित्या ही नित्य है।

११ ध्यान—च—तुषारकुन्दपुष्पाभां नानालङ्कारभूषितां ।
सदा षोडशवर्षीयां वराभयकरां परां ॥
शुक्लवस्त्रावृतकटीं शुक्लवस्त्रोत्तरीयिणीं ।
वरदां शोभनां रम्यां अष्टबाहुसमन्वितां ॥
एवं ध्यात्वा चकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ।
चवर्णं शृणु सुश्रोणि चतुर्वर्गफलप्रदं ॥
कुण्डलीसहितं धूम्रं महाचण्डार्चितं पुरा ।
सततः कुण्डलीयुक्तं पञ्चदेवमयं सदा ॥
सर्वसृष्टिप्रदं वर्णं पञ्चप्राणात्मकं प्रिये ।

बीजाक्षर—'च'; जपादि पूर्ववत्; पूजन-यन्त्र—पृष्ठ १० पर दिये त्रिकोण के समान, उसमें 'क्लीं' के स्थान पर सर्वत्र 'श्रीं' लिखे ।

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि ।
प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः ॥
त्रयश्चत्वारिंशद्वसुदलकलाब्जत्रिवलय—
त्रिरेखाभिः सार्द्धं तव चरणकोणाः परिणताः ॥११॥*

भावार्थ—श्रीचक्र के मध्य नव त्रिकोणों में चार शिवात्मक हैं तथा पाँच शक्त्यात्मक हैं। ये सब शम्भु (विन्दु) से पृथक्

---

* १ इस श्लोक में चक्र (श्री यन्त्र) निर्माण का श्री स्तवनकार ने वर्णन किया है ।

२ श्रीचक्र की रचना तीन प्रकार से निरूपित की गई है—

१ मेरुपृष्ठ, २ कूर्मपृष्ठ और ३ भूपृष्ठ ।

मेरुपृष्ठ-प्रस्तार यन्त्र में षोडशनित्या-विधान इस प्रकार है—विन्दु से प्रारम्भ—१ श्री महात्रिपुरसुन्दरी, २ कामेश्वरी, ३ भगमालिनी, ४ नित्यक्लिन्ना, ५ भेरुण्डा, ६ वह्निवासिनी, ७ महाविद्येश्वरी, ८ शिवदूती,

हैं। फिर अष्टदल पद्म तथा षोडशदल पद्म हैं, पश्चात् त्रिवृत्त तथा त्रिभूपुर हैं। सब त्रिकोणों की संख्या ४३ है।

इस स्तवन (सौन्दर्यलहरी) के प्रत्येक श्लोक के प्रारम्भ शताक्षरी महामन्त्र के जो १०१ बीजाक्षर हैं, उनकी जपाराधना के साथ प्रत्येक बीजमन्त्र का एक ए० पूजन-यन्त्र निर्दिष्ट है। उनमें से प्रत्येक यन्त्र श्री महायन्त्र का एक एक भाग है। यथा—मध्य के ४३ त्रिकोण + २४ (८ + १६) पद्मदल + १५ त्रिवृत्त (धनुराकार यन्त्र) + १९ त्रिभूपुर (चतुष्कोण यन्त्र) = १०१ कुल यन्त्र।

४३ त्रिकोण अपने पूज्य देवता-सह श्रीयन्त्र में हैं।

२४ पद्मदल के देवताओं की पूजन-विधि भी श्रीयन्त्र में कही है।

१५ (१) सूक्ष्म-पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, (२) सूक्ष्म-पञ्च कर्मेन्द्रियाँ, (३) सूक्ष्म-पञ्च तन्मात्रायें।

१९ (१) पञ्च प्रेतासन सतत ब्रह्माण्ड के १ ब्रह्मा, २ विष्णु, ३ रुद्र, ४ इन्द्र और ५ श्री कालपुरुष भगवान् ईशान;

(२) दश दिग्पाल—१ महेन्द्र, २ महाग्नि, ३ महायम, ४ महानिऋत, ५ महावरुणदैवत्, ६ महावायुदैवत्, ७ महासोम, ८ ईशान (मदनभैरव, आनन्दभैरव), ९ श्री धूम्राशक्ति (ऊर्ध्व में) और १० श्री महानन्तशक्ति (अधर में)।

---

९ त्वरिता, १० कुलसुन्दरी, ११ नित्या, १२ नीलपताका, १३ विजया, १४ सर्वमङ्गला, १५ ज्वालामालिनी, १६ चित्कला······द्वादश योगिनी—१ विद्या योगिनी, २ रेचिका योगिनी, ३ मोचिका योगिनी, ४ अमृता योगिनी, ५ दीपिका योगिनी, ६ ज्ञानदा योगिनी, ७ आप्यायनी योगिनी, ८ व्यापिनी योगिनी, ९ मेधा योगिनी, १० व्योमाद्या योगिनी, ११ सिद्धिदा योगिनी, १२ लक्ष्मी योगिनी।

(३) १ मन, २ बुद्धि, ३ चित्त, ४ अहङ्कार।

१२ ध्यान—'त्व'; इस बीजाक्षर का ध्यान-जपादि पृष्ठ ४-७ पर दिया है; पूजन-यन्त्र—त्रिकोण उसके मध्य में 'क्लीं'।

त्वदीयं सौन्दर्यं तुहिनगिरिकन्ये तुलयितुं।
कवीन्द्राः कल्पन्ते कथमपि विरञ्चिप्रभृतयः॥
यदा लोकौत्सुक्यादमरललना यान्ति मनसा।
तपोभिर्दुष्प्रापामपि* गिरिशसायुज्यपदवीं॥१२॥

भावार्थ—परम शान्तिस्वरूपे हे हिमराजकन्ये, हे महा-शान्तिस्वरूप हिमगिरि की मूलस्पन्दरूपा बालिका! आपश्री के दिव्य सौन्दर्य की तुलना करने के लिए विरंच्यादि कवि किसी प्रकार कल्पना करते हैं। आपका वह अतुल अपार अकथनीय सौन्दर्य शब्दवर्णन-प्रणाली के अति परे है। आपके दिव्य सौन्दर्य की दर्शन-लालसा से देवाङ्गनायें अत्यन्त दुष्प्राप्य श्री देवगुरु गिरीश सर्वेश शिव की तन-मन से आराधना-तपादि करती हैं, जिससे उन महादेव से सायुज्य प्राप्तकर आपके दिव्य महारूप के दर्शन का सौभाग्य पा सकें।

१३ ध्यान—न—दलिताञ्जनवर्णाभां ललज्जिह्वां सुलोचनां।
चतुर्भुजां चकोराक्षीं चारुचन्दनचर्चिताम्॥
कृष्णाम्बरपरीधानां ईशद्धास्यमुखीं सदा।
एवं ध्यात्वा नकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्॥

---

* 'तपोभिर्दुष्प्रापां' के स्थान में कहीं 'पशूनां दुष्प्रापां' पाठ है। पशु की परिभाषा यह है—

"घृणा शङ्का भयं लज्जा जुगुप्सा चेति पञ्चमी।
कुलं शीलं च शक्तिश्चाष्टौ पाशाः प्रकीर्तिताः॥"
पाशबद्धः पशुः प्रोक्तो पाशमुक्तः सदाशिवः।

नकारं शृणु चार्वङ्गि रक्तविद्युल्लताकृतिः।
पञ्चदेवमयं वर्णं स्वयं परमकुण्डली॥
त्रिगुणाशक्तिसंयुक्तं हृदि भावय पार्वति।

बीजाक्षर—'न'; जप-संख्या—१०००; जप-स्थान—मूलाधार; होम—रक्तपुष्प, बिल्व, तिल और यवों से १०० या १०; मार्जन—१०; तर्पण—१०; श्लोकपाठ-संख्या—१०; श्लोक-पाठ आहुति—१। पूजन-यन्त्र—
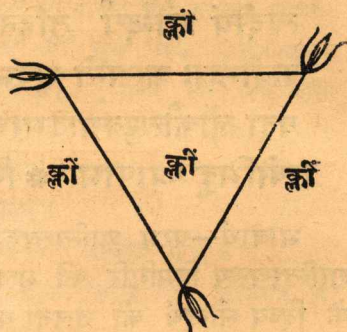
नरं वर्षीयांसं नयनविरसं नर्मसु जडं।
तवापाङ्गालोके पतितमनुधावन्ति शतशः॥
गलद्वेणीबन्धाः कुचकलशविस्रस्तसिचया।
हठात्त्रुट्यत्कांच्यो विगलितदुकूला युवतयः॥१३॥

भावार्थ—हे महाशक्तिमयी मा! सैकड़ों सुन्दरियाँ, अति-रूपवती स्त्रियाँ, जिनके गले पर वेणी छूट पड़ी है; साड़ी उड़ने से जिनके कुच खुल गये हैं; हठात् दौड़ने आदि परिश्रम से जिनकी करधनी टूट गयी है और वस्त्र जिनके खिसक रहे हैं—ऐसी विकलता की स्थिति में—फीकी आँखवाले, वृद्ध, जड़, नपुंसक उस पुरुष के पीछे-पीछे दौड़ती हैं, जिस पर आप श्री का कृपा-कटाक्ष पड़ गया हो।

इस श्लोक में कथित भाव मादन प्रयोग कहाता है।

१४ ध्यान—ल—चतुर्भुजां त्रिनयनां बाहुवल्लीविराजितां ।
रत्नकङ्कणकेयूरहारनूपुरभूषितां ॥
शुक्लाम्बरां शुक्लवर्णां द्विभुजां रक्तलोचनां ।
श्वेतचन्दनलिप्ताङ्गीं मुक्ताहारोपशोभितां ॥
एवं ध्यात्वा लकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ।
लकारं शृणु चार्वङ्गि कुण्डलीत्रयसंयुतं ॥
चतुर्वर्गमयं वर्णं पञ्चदेवमयं तु तत् ।
आघएटसिंहबीजं च पञ्चप्राणात्मकं प्रिये ॥
शरच्चन्द्रप्रतीकाशं हृदि भावय सुन्दरि ।

बीजाक्षर—'ल'; जपादि पूर्ववत्; पूजन-यन्त्र—पृष्ठ १७ पर दिये त्रिकोण के समान, उसमें 'हंसः', 'सों' और 'हं' के स्थान में क्रमशः 'श्रीं', 'ह्रीं' और 'क्लीं' लिखे ।

क्षितौ षट्पञ्चाशत् द्विसमधिकपञ्चाशदुदके ।
हुताशे द्वाषष्टिश्चतुरधिकपञ्चाशदनिले ॥
दिवि द्विःषट्त्रिंशन्मनसि च चतुःषष्टिरिति ये ।
मयूखास्तेषामप्युपरि तव पादाम्बुजयुगम् ॥१४॥

भावार्थ—हे मा, हे सर्वसिद्धिमयि ! आप श्री के चरण-कमल पञ्चतत्त्वात्मक केन्द्रबिन्दु—महाकाश से परमपर हैं। केन्द्रबिन्दु ३६० कला का होता है। उसमें की ५६ भ्वात्मक मयूखायें पृथ्वी की, ५२ जलात्मक उदधि की, ६२ अग्न्यात्मक वह्नि की, ५४ अनिलात्मक वायु की, ७२ आकाशात्मक शून्य (व्योम) की और ६४ मयूखायें मन की हैं। पञ्चतत्त्वात्मक इस देह की सब मिला कर २९६ कलायें हैं और मन की ६४। इस प्रकार कुल ३६० कलायें (मयूखायें) हुईं। इन सम्पूर्ण

जीवनात्मक तथा सृष्ट्यात्मक विश्वशक्ति-कलाओं से आपके श्री चरणकमल अत्यन्त परे हैं।

उत्पत्ति, स्थिति, लय—ये त्रिक्रियाएँ सृष्टिक्रम कहाती हैं। इन तीन क्रियाओं के त्रिगुण तथा त्रिदैवत् हैं। रज, सत, तम—ये तीन गुण हैं और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र त्रिदेव हैं।

५६ कला भ्वात्मक—६ बीज (ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः)+५० लिपिवर्ण=५६।

५२ कला जलात्मक (उदधि)—५० लिपिवर्ण+२ बीज (सौं श्रीं) =५२।

६२ कला अग्न्यात्मक—५० लिपिवर्ण+ॐ हंसः सोहं ॐ सोहं हंसः ॐ ह्रीं १२=६२।

५४ कला अनिलात्मक (वायु)—५० लिपिवर्ण+यं रं लं वं=५४।

७२ कला व्योमात्मक—अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं एं ऐं ओं औं अं अः, अः अं औं ओं ऐं एं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं ऐं ह्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं एं ऐं ओं औं अं अः, अः अं औं ओं ऐं एं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं, अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं एं ऐं ओं औं अं अः=७२।

६४ कलात्मक मन—अं आं इं ईं उं ऊं एं ऐं ओं औं अं अः, अः अं औं ओं ऐं एं ऊं उं ईं इं आं अं श्रीं ए अं आं इं ईं उं ऊं एं ऐं ओं औं अं अः, अः अं औं ओं ऐं एं ऊं उं ईं इं आं अं ह्रीं क्लीं अं आं इं ईं उं ऊं एं ऐं ओं औं अं अः=६४।

३६०

मूलाधार चक्र	+मणिपुर—	अग्निकला	=१०८
स्वाधिष्ठान ”	+अनाहत—	सूर्यकला	=११६
विशुद्ध ”	+आज्ञा —	चन्द्रकला शान्तिप्रकला	=१३६
			३६०

१५ ध्यान—'श'—इसका ध्यान पृष्ठ १ पर दिया है।

बीजाक्षर—'श'; जप—१०००; जप-स्थान—मूलाधार चक्र के चार दलों में; होम—रक्तपुष्प; बिल्व, तिल और यवों से १०० या १० आहुतियाँ; मार्जन—१०; तर्पण—१०; श्लोक-पाठ-संख्या—१०; श्लोक-पाठ की आहुति—१। पूजन-यन्त्र—
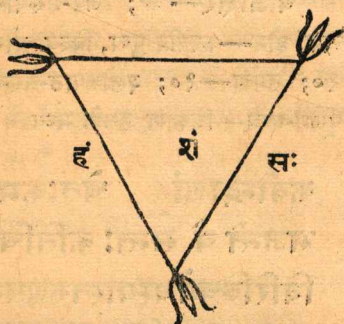
शरज्ज्योत्स्नाशुभ्रां शशियुतजटाजूटमुकुटां।
वरत्रासत्राणस्फटिकघटिकापुस्तककराम् ॥
सकृन्नत्वा न त्वां कथमिव सतां सन्निदधते।
मधुक्षीरद्राक्षामधुरिमधुरीणा भणितयः ॥१५॥

भावार्थ—हे मा, हे विश्वकल्याणकारिणि! आप शरच्चन्द्रिका से अत्यधिक शुभ्र हो। आपके शिर पर महाशान्ति-सूचक चन्द्र तथा महामाया-जाल-सूचक जटाजूट मुकुट शोभा दे रहा है। आपके दक्ष कर में विश्वव्यक्ति-कर्मजनित महाभयङ्कर दुःख से छुड़ानेवाले वरदान का भाव तथा स्फटिक की माला है। वाम कर में पुस्तक तथा अभय है। जिसने आपके दिव्य श्री चरण-कमलों में एक बार भी प्रेमपूर्वक प्रणाम किया है, उसके मुख से मधु, क्षीर, द्राक्षा, शर्करादि से भी मधुर अमृतमयी वाणी क्यों न झरेगी?

१५ वें श्लोक में श्री जगद्धात्री विश्वम्भरा मा के कृपा-कटाक्ष का महत्त्व बताया है, इसमें प्रणाम-माहात्म्य है। इस श्लोक में सारस्वत-प्रयोग भी है।

१६ ध्यान—'क' का ध्यान पृष्ठ ११ पर दिया है।

बीजाक्षर—'क'; जप-संख्या—१०००; जप-स्थान—स्वाधिष्ठान चक्र; होम—करवीर पुष्प, बिल्व और पायस से १०० या १०; मार्जन—१०; तर्पण—१०; श्लोकपाठ-संख्या—१०; श्लोकपाठ आहुति—२; पूजन-यन्त्र—त्रिकोण उसके मध्य में 'वं'।

कवीन्द्राणां चेतःकमलवनबालातपरुचिं।
भजन्ते ये सन्तः कतिचिदरुणामेव भवतीम्॥
विरिञ्चिप्रेयस्यास्तरुणतरशृङ्गारलहरी—
गभीराभिर्वाग्भिर्विदधति सतां रञ्जनममी ॥१६॥

भावार्थ—हे मा, हे सर्वज्ञानमयी महाविद्या! जो कविश्रेष्ठ साधक अपने हृदय को कमलवन कल्पित कर आप श्री के दिव्य विद्या-भाव का उस कमल-वन को विकसित करनेवाली श्री अरुणा के भाव में आराधन करता है, वह श्रेष्ठ पुरुष के मन को श्री सरस्वती के समान श्री शृङ्गारलहरीमयी गम्भीरनिष्ठ वाणी से प्रसन्न करता है।

इस श्लोक में वाग्भव कूट की उपासना कही है।

१७ ध्यान—'स' का ध्यान पृष्ठ १३ पर दिया है। जपादि विधान उक्त 'क' विधान के समान; पूजन-यन्त्र—त्रिकोण, उसके मध्य में 'एं'।

सवित्रीभिर्वाचां शशिमणिशिलाभङ्गरुचिभि—
र्वशिन्याद्याभिस्त्वां सह जननि संचिन्तयति यः।
स कर्ता काव्यानां भवति महतां भङ्गिसुभगै—
र्वचोभिर्वाग्देवीवदनकमलामोदमधुरैः ॥१७॥

भावार्थ—हे विश्वभारती मा ! चन्द्रमणि शिलाभङ्ग अर्थात् चन्द्रमणि शिला के पहल-समान दिव्यरूपा वशिन्यादि अष्ट-शक्ति (सर्वरोगहरचक्रनायिका) सहित आपका जो चिन्तन करता है, वह ऐसे महाकाव्यों का कर्ता होता है, जिनमें श्री भगवती सरस्वती के कमलमुख से निर्गत मधुर वाणी के समान अत्यन्त रसमयी वाणी भरी होती है।

इस श्लोक में श्री ज्ञानदा शक्ति की आराधना का भाव है।

१८ ध्यान—'त'—इसका ध्यान पृष्ठ ४ पर दिया है। जपादि उक्त 'क'—विधानवत्। पूजन-यन्त्र—त्रिकोण, उसके मध्य में 'श्रीं'।

तनुच्छायाभिस्ते तरुणतरणिश्रीधरणिभिः।
दिवं सर्वामुर्वीमरुणिमणिमग्नां स्मरति यः॥
भवन्त्यस्य त्रस्यद्वनहरिणशालीननयनाः।
सहोर्वश्या वश्याः कति कति न गीर्वाणगणिकाः॥१८॥

भावार्थ—हे विश्वम्भरा मा ! जो व्यक्ति आपकी दिव्य उद्यद्भास्करवत् लावण्यमयी प्रभा की दिव्य रक्ताभा में भू स्वर्गादि निमग्न हुए देखता हुआ तद्रूप में आपकी आराधना करता है, उसके वश में हरिणाक्षी उर्वश्यादि सम्पूर्ण अप्सरायें हो जाती हैं।

इस श्लोक में कामराजकूट का इच्छाशक्ति के रूप में वर्णन है।

१९ ध्यान—'मु'—म् + उ = इन दोनों का ध्यान क्रमशः पृष्ठ १६ और १४ पर दिया है।

बीजाक्षर—'मु'; जप-संख्या—१०००; जप-स्थान—स्वाधिष्ठान; होम—करवीर पुष्प, बिल्व और पायस से १०० अथवा १०; मार्जन—१०; तर्पण—१०; श्लोकपाठ-संख्या—१०; श्लोक पाठ आहुति—२। पूजन-यन्त्र—
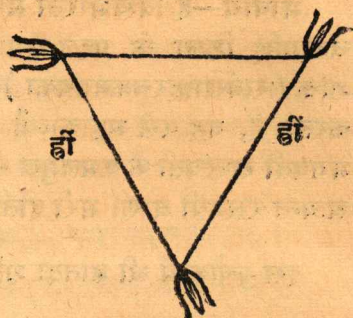
मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो।
हरार्द्धं ध्यायेद्यो हरमहिषि ते मन्मथकलां॥
स सद्यः संक्षोभं नयति वनिता इत्यतिलघु।
त्रिलोकीमप्याशु भ्रमयति रवीन्दुस्तनयुगां॥१९॥

भावार्थ—हे मा, हे हर-महिषि! जो व्यक्ति आपके अति दिव्य श्री मुख को बिन्दु बना कुचयुग और उसके नीचे तथा उसके भी नीचे त्रिकोणाकार-भाव में शिवार्द्ध-रूप मानकर आपकी मन्मथ कला का ध्यान करता है, उसके लिये किसी भी स्त्री को वश में कर लेना साधारण बात है। वह तीनों लोकों को, जिनके कि स्तन सूर्य तथा चन्द्रमा है, वश में कर सकता है।

इस श्लोक में मादन प्रयोग-सिद्धि है। इसमें कामराजकूट के साथ इच्छाशक्ति का प्रधानत्व है। श्रीमहामाया की मन्मथ कला का बीज 'क्लीं' (कामबीज) है। ऊपर मुख पर बिन्दु है। नीचे बिन्दु-प्रकार की दो गुण्डियाँ। उसके नीचे लकार का योग है। इस महाकामबीज को गुप्त महासरस्वती बीज भी कहते हैं।

श्री क्रम के अनुसार त्रिबिन्दु का अर्थ इस प्रकार है—

बिन्दु	गुण	दैवत	
१—अग्नि	रजस्	ब्रह्मा	
२—सूर्य	सत्व	हरि	ये दो कुच-बिन्दु हैं ।
३—चन्द्र	तम	हर	

उसके नीचे चित्कला गुणत्रय भाव है । उसके नीचे बिन्दु-त्रय भाव में अर्द्धशिव रूप 'हंसः' है । इसमें भी तीन बिन्दु हैं ।

प्रथमार्द्ध श्लोक का भाव विश्व स्त्री-वशीकरण महामाया शक्ति है । द्वितीयार्द्ध में विश्व-वशीकरण शक्ति सामर्थ्य है । इस श्लोक में चिद्कुण्डलिनी संयोग या शिव-शक्ति-मिलन का भाव है ।

२० ध्यान—'कि' = क् + इ—'क्' का ध्यान पृष्ठ ११ पर और 'इ' का पृष्ठ २ पर दिया है ।

बीजाक्षर—'कि'; जप-संख्या—१०००; जप-स्थान—स्वाधिष्ठान; होम—करवीर पुष्प, बिल्व और पायस से १०० अथवा १० आहुतियाँ; मार्जन—१०; तर्पण—१०; श्लोकपाठ-संख्या—१०; श्लोक-पाठ आहुति—२; पूजन-यन्त्र—
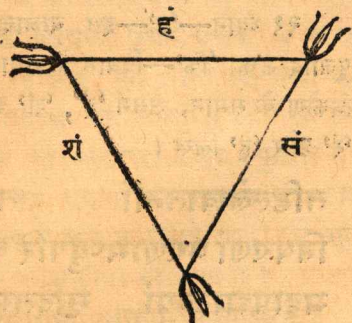
किरन्तीमङ्गेभ्यः किरणनिकुरुम्बामृतरसं ।
हृदि त्वामाधत्ते हिमकरशिलामूर्तिमिव यः ॥
स सर्पाणां दर्पं शमयति शकुन्ताधिप इव ।
ज्वरप्लुष्टान्दृष्ट्या सुखयति सुधासारशिरया ॥२०॥

भावार्थ—हे मा, हे अमृतसागरा ! जो साधक अङ्गों से अमृत-किरणें फैलाती हुई अमृतमयी आपकी महासुन्दर हिमकर-शिला जैसी शुभ्र छवि का ध्यान करता है, वह पक्षीराज गरुड़वत् सर्पविष का उपशमन कर उन महाविषधरों के दर्प का नाश करता है और उस साधक-श्रेष्ठ की सुधामयी दृष्टिमात्र से ज्वराक्त दुःखी का ज्वर दूर हो जाता है। वह सिद्ध व्यक्ति मृत्यु को भी विजय कर सकता है।

यह मृतसञ्जीवनी विद्या है। इसके शिवशक्तिमय बीज हैं—हौं जूं सः। 'हौं' शिवबीज, 'जूं' जीवनबीज, 'सः' शक्तिबीज। शिवबीज 'हौं' से जीवन-शक्ति 'जूं' का आप्यायन होता है तथा शक्तिवीज 'सः' से जीवन-शक्ति (जीवन-क्रम) की वृद्धि होती है। जूं (जीवन-शक्ति) के शिवशक्त्याश्रय होने से जीवन-वृद्धि का नाम मृत्युञ्जय-सिद्धि है।

२१ ध्यान—'त'—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ४ पर दिया है। पूजादि उक्त 'कि'—विधान के समान; पूजन-यन्त्र—पृष्ठ ३१ पर दिये त्रिकोण के समान, उसमें 'हं', 'शं' और 'सं' के स्थान में क्रमशः 'त्तं', 'रं' और 'हं' लिखे।

तडिल्लेखातन्वीं तपनशशिवैश्वानरमयीं।
निषण्णां षण्णामप्युपरि कमलानां तव कलाम्॥
महापद्माटव्यां मृदितमलमायेन मनसा।
महान्तः पश्यन्तो दधति परमाह्लादलहरीम्॥२१॥

भावार्थ—श्री कामकला-ध्यान अर्थात् त्रिदेव-माता का बाह्य ध्यान १९वें श्लोक में कहा है। इस श्लोक में श्री आनन्द-मयी का श्रेष्ठ साधकोपयुक्त अभ्यन्तर ध्यान दिया गया है। हे मा, हे आनन्दमयी महाकला ! अग्नि-शिव-शशिमयी आप

तीव्र विद्युत् रेखावत् द्रुतगतिमयी तथा अनन्त काशमयी हो। चन्द्राग्नि-सूर्यादि सब आपश्री के अनन्त शक्तिसागर में बिन्दुवत् हैं। आप प्रकृतिचक्र के षट्चक्र-पद्मों से अति परे हैं। विश्व महापद्मवन में जिन महाभ्यासी साधकों के मन कामक्रोधादि विकारमय कीचड़ से पर हुए हैं—छूट गये हैं—वे आपके चिच्छक्ति भाव का चिन्तन करते हुए परमानन्दलहरीरूपिणी श्री कला का दर्शन पाते हैं। कमलवन सुखप्रद होने पर भी उसमें कीचड़ रहता है। कमलवन का आनन्द लेते हुये भी जो श्रेष्ठ साधक तत्स्थानस्थ कीचड़ से बचकर रहते हैं, वे ही श्रेष्ठ साधक हैं तथा वे ही श्री मा जगदम्बा के दिव्याशीर्वाद के पात्र हैं।

इस श्लोक में सहस्रार के दिव्य दर्शन का भाव है।

अग्नि-सूर्य-सोम—प्रशान्त एकात्मता की स्थिति-शान्ति-पराकला—इन तीन बिन्दुओं के आधार-स्थान को योनि कहते हैं। इन तीनों बिन्दुओं की बाह्य क्रियाएँ पृथक्-पृथक् हैं परन्तु योन्याधार-स्थान को पाकर त्रिबिन्दु की तीनों क्रियाओं का सम्मिश्रण तथा लयीकरण प्रारम्भ हो जाता है और उन्मनी भाव की जागृति हो उसमें से सपरार्द्ध कला स्फुरती है। इस स्थान पर शिव-शक्ति की एकता का साधक को भान होता है। इस एकात्म महानन्द में साधक अपने 'अहं' को भूल जाता है। यही आनन्दमयी एकात्मभावा समाधि है।

२२ ध्यान—भ—तडित्प्रभां महादेवीं नागकङ्कणशोभितां।
चतुर्वर्गप्रदां देवीं साधकाभीष्टसिद्धिदां॥
एवं ध्यात्वा भकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
भकारं शृणु चार्वङ्गि स्वयं परमकुण्डलि॥
महामोक्षप्रदं वर्णं तरुणादित्यसम्प्रभं।
पञ्चप्राणमयं वर्णं पञ्चदेवमयं प्रिये॥

बीजाक्षर—'भ'; जपादि विधान उपर्युक्त समान; पूजन-यन्त्र—पृष्ठ १० पर दिये त्रिकोण के समान, उसमें 'क्लीं' के स्थान पर सर्वत्र 'ह्रीं' लिखे।

भवानि त्वं दासे मयि वितर दृष्टिं सकरुणा-
मिति स्तोतुं वाञ्छन्कथयति भवानि त्वमिति यः॥
तदैव त्वं तस्मै दिशसि निजसायुज्यपदवीं।
मुकुन्दब्रह्मेन्द्रस्फुटमुकुटनीराजितपदाम् ॥२२॥

भावार्थ—हे मा! आप पूर्ण दयामृतसागरा हो—आप दिव्य दयाघना हो। आपकी दयामयी बौछार निज भक्तों को विश्व-त्रिताप से बचाने के लिये उन पर बरसा ही करती है। "हे मा, हे करुणामयी, हे भवानी! आप अपने करुणामय दृष्टिपात से मुझ दास को देखिये"—इस प्रकार आपका स्तवन करने की इच्छावाला ज्यों ही अपने मुख से 'भवानि त्वं' इतने शब्द निकालता है कि आप त्वरित ही उसे अपना सायुज्य पद दे देती हैं। जो पद मुकुन्द ब्रह्मेन्द्रादि देवों के शीसमुकुट से सेवित हैं तथा जिन चरणकमलों की आरती देवमुकुटमणि की ज्योति से उतारी जाती है। अर्थात् मैं आप श्री के चरणों में तल्लीन हो जाऊँ, ऐसा सतत ध्यान करने-वाले व्यक्ति में आपकी सिद्ध्यादि अनेक शक्तियाँ प्रकट होने लगती हैं।

पिछले श्लोकों में बहिर्याग, अन्तर्यागादि का वर्णन करने के पश्चात् इस श्लोक में स्तवन-कर्ता ने भक्तिभाव का वर्णन किया है। भक्ति-योगमतानुसार मुक्त भक्त की चार अवस्थायें कही हैं। यथा—

१ सालोक्य, २ सामीप्य, ३ सारूप्य और ४ सायुज्य।

२३ ध्यान—'त्व'—इसका ध्यान पृष्ठ ४-७ पर दिया है।

बीजाक्षर—'त्व'; जप-संख्या—१०००; जप-स्थान—स्वाधिष्ठान; होम—करवीर पुष्प, बिल्व और पायस से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ-संख्या—१०; श्लोक-पाठ आहुति—२। पूजन-यन्त्र—
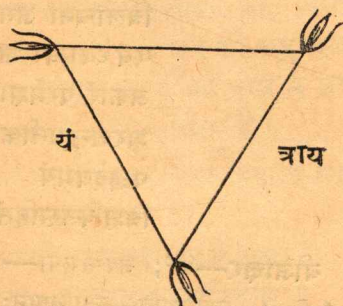
त्वया हृत्वा वामं वपुरपरितृप्तेन मनसा।
शरीरार्द्धं शम्भोरपरमपि शङ्के हृतमभूत्॥
यदेतत्त्वद्रूपं सकलमरुणाभं त्रिनयनं।
कुचाभ्यामानम्रं कुटिलशशिचूडालमुकुटं॥२३॥

भावार्थ—हे जगदम्ब, हे मा! (ऐसा आभास होता है कि) भगवान् शिव का वामाङ्ग हरण कर आप श्री ने सन्तोष न मान उनका दक्षिणार्द्ध भी हरण कर लिया है। आप श्री के दिव्य शरीर की यह रक्ताभ छवि, त्रिनेत्र, कुचभार से अङ्ग की कुछ झुकावट तथा चन्द्रमुकुट इस गुप्तभेद के साक्षी हैं अर्थात् श्री भगवान् शिव के अलङ्कारों का आपके श्री देह में प्रत्यक्ष दर्शन होता है। इससे सिद्ध है कि श्री शिव का पूरा देह आपने अपने में पचा लिया है।

इस श्लोक में शिवतत्व के शक्तितत्व में लय हो जाने से शक्तितत्व का प्रधानत्व बताया है।

२४ ध्यान—ज— नानालङ्कारसंयुक्तैर्भुजैर्द्वादशभिर्युतं ।
रक्तचन्दनदिव्याङ्गीं चित्राम्बरविधारिणीं ॥
त्रिलोचनां जगद्धात्रीं वरदां भक्तवत्सलां ।
एवं ध्यात्वा 'ज' कारं तु तन्मत्रं दशधा जपेत् ॥
जकारं परमेशानि या स्वयं मध्यकुण्डली ।
शरच्चन्द्रप्रतीकाशं दिव्यत्रिमुण्डसंयुतं ॥
पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं प्रिये ।
त्रिशक्तिसहितं वर्णं द्विविन्दुसहितं यजेत् ॥

बीजाक्षर—'ज'; जप-संख्या—१०००; जप-स्थान—स्वाधिष्ठान; होम—करवीर पुष्प, बिल्व और पायस से १०० या १०; मार्जन—१०; तर्पण—१०; श्लोकपाठ-संख्या १०; श्लोकपाठ आहुति–२; पूजन-यन्त्र—
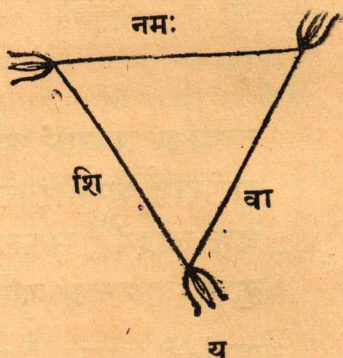
जगत्सूते धाता हरिरवति रुद्रः क्षपयते ।
तिरस्कुर्वन्नेतत्स्वमपि वपुरीशस्तिरयति ॥
सदापूर्वः सर्वं तदिदमनुगृह्णाति च शिव-
स्तवाज्ञामालम्ब्य क्षणचलितयोर्भ्रूलतिकयोः ॥२४॥

भावार्थ—श्री श्री हे मा, हे विश्वविधायिनि ! विधाता ब्रह्मा विश्व की सृष्टि करते हैं, हरि पालन करते हैं, रुद्र संहारक हैं। उत्पत्ति-स्थिति-लयात्मक ब्रह्मेश हरि-सहित जगत् का तिरस्कार कर विश्वेश अपने निज देह को भी तिरोभावस्थ कर

देते हैं। भगवान् श्री शिव आप श्री के चलित नेत्रों की भ्रुवें-गिताज्ञा से इन सब पर अनुग्रह करते हैं अर्थात् बीज में पुनरुत्पत्ति-शक्ति का सञ्चार करते हैं अर्थात् ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु और ईश्वर के लय होने के पश्चात् अकेले भगवान् श्री सदाशिव ही रह जाते हैं, जो ईश्वर-सहित सम्पूर्ण तत्त्वों का बीज में लय कर लेते हैं। यहीं से पुनरुत्पत्ति-प्रकार प्रारम्भ होता है।

२५ ध्यान—त्र=त्+र्—'त' का ध्यान पृष्ठ ४ पर दिया है और र का ध्यान इस प्रकार है—

र—ललज्जिह्वां महारौद्रीं रक्तास्यां रक्तलोचनां।
रक्तमाल्याम्बरधरां रक्तालङ्कारभूषिताम् ॥
रक्तवर्णामष्टभुजां रक्तपुष्पोपशोभिताम्।
महामोक्षप्रदां नित्यां अष्टसिद्धिप्रदायिकां॥
एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपां तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
रेफं च चञ्चलापाङ्गि कुण्डलीद्वयसंयुतं॥
रक्तविद्युल्लताकारं पञ्चदेवात्मकं सदा।
त्रिशक्तिसहितं देवि आत्मादितत्त्वसंयुतं॥
सर्वतेजोमयं वर्णं सततं मनसि चिन्तयेत्।

बीजाक्षर—'त्र'; जपादि विधान उपर्युक्त समान; पूजन-यन्त्र—त्रिकोण उसके मध्य में 'सौः'।

त्रयाणां देवानां त्रिगुणजनितानां तव शिवे।
भवेत्पूजा पूजा तव चरणयोर्या विरचिता॥
तथाहि त्वत्पादोद्वहनमणिपीठस्य निकटे।
स्थिता ह्येते शश्वन्मुकुलितकरोत्तंसमुकुटाः॥२५॥

भावार्थ—हे मा, हे विश्वव्यापिनि ! तेरे त्रिगुण से उत्पन्न हुये ब्रह्मा, हरि, रुद्रादि देवों की पूजा तेरे श्री चरणों की

आराधना के साथ ही हो जाया करती है क्योंकि वे तेरे चरणज गुणों से ही उत्पन्न हुये हैं। इसी कारण आप श्री के चरण-विश्राम-स्थान—मणिपीठ के समीप वे अपने मुकुट से मिले हुये हाथों को जोड़कर खड़े रहते हैं।

२६ ध्यान—वि=व् +इ—इन दोनों वर्णबीजों का ध्यान क्रमशः पृष्ठ ७ और २ पर दिया है।

बीजाक्षर—'वि'; जप-संख्या—१०००; जप-स्थान—स्वाधिष्ठान; होम—करवीर पुष्प, बिल्व और पायस से १०० अथवा १० आहुतियाँ; मार्जन—१०; तर्पण—१०; श्लोकपाठ-संख्या—१०; श्लोक-पाठ आहुति—२; पूजन-यन्त्र—
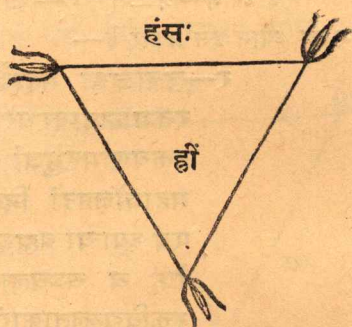
विरञ्चिः पञ्चत्वं व्रजति हरिराप्नोति विरतिं।
विनाशं कीनाशो भजति धनदो याति निधनं॥
वितन्द्रा माहेन्द्री विततिरपि सम्मीलति दृशां।
महासंहारेऽस्मिन्विहरति सति त्वत्पतिरसौ॥२६॥

भावार्थ—हे त्रिभुवनाधीश्वरि, हे मा! ब्रह्मा पञ्चत्व को प्राप्त होता है अर्थात् तत्वों में विलय हो जाता है। हरि का व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है। यम का विनाश होता है, कुबेर का क्षय होता है, सदा जागृत महेन्द्र के नेत्र बन्द हो जाते हैं। महाप्रलयकाल के पश्चात् आप श्री के पति महाशिव ही अकेले जागते रहते हैं।

२७ ध्यान—'ज'—इसका ध्यान पृष्ठ ३६ पर दिया है।

बीजाक्षर—'ज'; जपादि विधान उपर्युक्त समान; पूजन-यन्त्र—पृष्ठ ३१ पर दिये त्रिकोण के समान, उसमें 'हं', 'शं' और 'सं' के स्थान पर क्रमशः 'ॐ'; 'ह्रीं' और 'श्रीं' लिखे।

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचनं।
गतिः प्रादक्षिण्यं भ्रमणमशनाद्याहुतिविधिः॥
प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदृशा।
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितं॥२७॥

भावार्थ—हे मा, हे सर्वमयि! मेरी इस देह से मेरी मनादि इन्द्रियों से जो कुछ भी बाह्यान्तर क्रिया हो, वह आप श्री अपनी आराधना-रूप में मान लें और स्वीकार करें। मेरा बोलना आप श्री का मन्त्रजप हो; शिल्पादि बाह्य क्रिया मुद्रा-प्रदर्शन हो; देह की गति (चलना) आपकी प्रदक्षिणा हो; भोजनादि हवन-प्रकार हो, देह का सोना (शयन) अष्टाङ्ग नमस्कार हो तथा हे मा, दूसरे शारीरिक सुखभोग सर्वार्पण-भाव में आप श्री ग्रहण करें।

यह अन्तराराधना-विधान है। इसमें सर्वार्पण-भाव है।

२८ ध्यान—सु = स् + उ—इसका ध्यान पृष्ठ १३-१४ पर दिया है।

बीजाक्षर—'सु'; जप-संख्या—१०००; जप-स्थान—स्वाधिष्ठान; होम—करवीर पुष्प, बिल्व और पायस से १०० अथवा १०: तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ-संख्या—१०; श्लोक-पाठ आहुति—२। पूजन-यन्त्र—
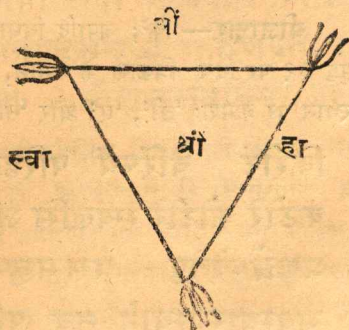
सुधामप्यास्वाद्य प्रतिभयजरामृत्युहरणीं ।
विपद्यन्ते विश्वे विधिशतमखाद्या दिविषदः ॥
करालं यत्क्ष्वेडं कवलितवतः कालकलना ।
न शम्भोस्तन्मूलं जननि तव ताटङ्कमहिमा ॥२८॥

भावार्थ—हे मा, हे विश्वजननि ! भय-जरा-मृत्यु को हरण करनेवाले अमृत को पीकर भी ब्रह्मा-इन्द्रादि अमरवर्ग विलय को प्राप्त होते हैं। महाकालकूट विष पीकर भी श्री महाप्रभु श्री सदाशिव काल-पर हैं। हे अमृतमयि! यह आप श्री के कर्णाभरण ताटङ्क की अमोघ महिमा है अर्थात् कर्ण-समीप कपोल-चुम्बन-प्रकार से श्री महाशिव-देहगत सम्पूर्ण महाविष-विकार उपशमित हो जाता है तथा वे महाकाल का भी पराभव करने में समर्थ होते हैं।

कहीं-कहीं कर्णताटङ्क सौभाग्य-चिह्न माना गया है। अतः अर्थ हो सकता है कि आपके अखण्ड सौभाग्य-चिह्न ताटङ्क की अमोघ शक्ति से श्री शिव मृत्युञ्जय हैं।

२६ ध्यान—'कि' = क् + इ—इसका ध्यान पृष्ठ ११ और २ पर दिया है।

बीजाक्षर—'कि'; जपादि विधान उपर्युक्त समान; पूजन-यन्त्र—पृष्ठ ३१ पर दिये त्रिकोण के समान, उसमें 'हं', 'शं' और 'सं' के स्थान पर क्रमशः 'क्लीं', 'ऐं' और 'सौः' लिखे।

किरीटं वैरिञ्च्यं परिहरपुरः कैटभभिदः ।
कठोरे कोटीरे स्खलसि जहि जम्भारिमुकुटं ॥
प्रणम्रेष्वेतेषु प्रसभमुपयातस्य भवनं ।
भवस्याभ्युत्थाने तव परिजनोक्तिर्विजयते ॥२९॥

भावार्थ—हे मा, हे भवानि ! आप श्री के दरबार में, जहाँ विरञ्चि (ब्रह्मा), कैटभारि (विष्णु), इन्द्रादि आपको साष्टाङ्ग प्रणाम कर रहे हैं तथा आप श्री की सेविकायें आपके चारों ओर खड़ी हैं, वहाँ श्री-दर्शनातुर श्री भगवान् शिव का आगमन सुनकर आप श्री को सहसा उनके स्वागतार्थ उठते हुये देखकर 'भगवति, सम्हाल कर ! श्री ब्रह्मदेव, इन्द्र तथा श्री हरि के मुकुट श्री चरणों में पड़े हैं, कुचल न जायँ, आप श्री को ठोकर न लगे'—इस प्रकार ललित विरुदावलि के शब्द श्री सेविकाओं के मुख से निकलते हुये विजय पावें।

इस श्लोक में श्री शिव-मिलनार्थ मा श्री की आतुरता का वर्णन है।

३० ध्यान—'स्व' = स् + व—इन दोनों वर्णबीजों का ध्यान क्रमशः पृष्ठ १३ और ७ पर दिया है।

बीजाक्षर—'स्व'; जपादि विधान उपर्युक्त समान; पूजन-यन्त्र—पृष्ठ ३१ पर दिये त्रिकोण के समान, उसमें 'हं', 'शं' और 'सं' के स्थान पर क्रमशः 'ऐं', 'क्लीं' और 'सौः' लिखे।

स्वदेहोद्भूताभिर्घृणिभिरणिमाऽऽद्याभिरभितो ।
निषेव्ये नित्ये त्वामहमिति सदा भावयति यः ॥
किमाश्चर्यं तस्य त्रिनयनसमृद्धिं तृणयतो ।
महासम्वर्ताग्निर्विरचयति नीराजनविधिम् ॥३०॥

भावार्थ—आप श्री के स्वदेहजनित दिव्य तेज-किरणों तथा अणिमादि अष्टसिद्धियों-द्वारा आवेष्टित हे विश्वेश्वरि मा, हे सतत विश्वव्यापिनि ! जो महासाधक आपके श्री चरणों में अपने अस्तित्व को घोल देने की भावना से आपका सदैव चिन्तन करता है तथा ईश्वर-पद को भी तृणवत् मानता है, क्या

आश्चर्य कि उसके सम्मुख प्रलयाग्नि नीराजन-दीपवत् हो जाय।

१ श्री महाशक्त्यावरण भूपुर में—

अष्टसिद्धियाँ--१ अणिमा, २ महिमा, ३ लघिमा, ४ गरिमा, ५ प्राप्ति, ६ प्राकाम्य, ७ ईशित्व, ८ वशित्व।

अष्टमातर—१ ब्रह्माणी, २ माहेश्वरी, ३ कौमारी, ४ वैष्णवी, ५ वाराही, ६ इन्द्राक्षी (माहेन्द्री), ७ चामुण्डा, ८ महालक्ष्मी।

दशमुद्रा—१ सर्वक्षोभिणी, २ सर्वद्राविणी, ३ सर्वाकर्षिणी, ४ सर्ववशङ्करी, ५ सर्वोन्मादिनी, ६ सर्वमहांकुशा, ७ सर्वखेचरी, ८ सर्वबीजा, ९ सर्वयोनि, १० सर्वत्रिखण्डा।

२ षोडशदल में--१ कामाकर्षिणी, २ बुद्ध्याकर्षिणी, ३ अहंकाराकर्षिणी, ४ शब्दाकर्षिणी, ५ स्पर्शाकर्षिणी, ६ रूपाकर्षिणी, ७ रसाकर्षिणी, ८ गन्धाकर्षिणी, ९ चित्ताकर्षिणी, १० धैर्याकर्षिणी, ११ स्मृत्याकर्षिणी, १२ नामाकर्षिणी, १३ बीजाकर्षिणी, १४ आत्माकर्षिणी, १५ अमृताकर्षिणी, १६ शरीराकर्षिणी।

३ अष्टदल में—१ अनङ्गकुसुमा, २ अनङ्गमेखला, ३ अनङ्गमदना, ४ अनङ्गमदनातुरा, ५ अनङ्गरेखा, ६ अनङ्गवेगिनी, ७ अनङ्गांकुशा, ८ अनङ्गमालिनी।

४ चतुर्दशार में—१ सर्वसंक्षोभिणी, २ सर्वविद्राविणी, ३ सर्वाकर्षिणी, ४ सर्वाह्लादिनी, ५ सर्वसम्मोहिनी, ६ सर्वस्तम्भिनी, ७ सर्वजृम्भिणी, ८ सर्ववशङ्करी, ९ सर्वरञ्जिनी, १० सर्वोन्मादिनी, ११ सर्वार्थसाधिनी, १२ सर्वसम्पत्तिपूरिणी, १३ सर्वमन्त्रमयी, १४ सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी।

५ बहिर्दशार में—१ सर्वसिद्धिप्रदा, २ सर्वसम्पत्प्रदा, ३ सर्वप्रियङ्करी, ४ सर्वमङ्गलकारिणी, ५ सर्वकामप्रदा, ६ सर्वसौभाग्यदा,

७ सर्वमृत्युप्रशमिनी, ८ सर्वविघ्ननिवारिणी, ९ सर्वाङ्गसुन्दरी, १० सर्वदुःखविमोचिनी

६ अन्तर्दशार में—१ सर्वज्ञा, २ सर्वशक्तिप्रदा, ३ सर्वैश्वर्यप्रदा, ४ सर्वज्ञानमयी, ५ सर्वविद्याविकासिनी (सर्वविद्याविशारदा), ६ सर्वाधारस्वरूपा, ७ सर्वपापहरा, ८ सर्वानन्दमयी, ९ सर्वरक्षास्वरूपिणी, १० सर्वेप्सितफलप्रदा ।

७ अष्टार में—१ वशिनी, २ कामेशी, ३ मोदिनी, ४ विमला, अरुणा, ६ जयिनी, ७ सर्वेशी, ८ कौलिनी ।

८ त्रिकोण में—१ कामेश्वरी, २ वज्रेशी, ३ भगमाला ।

९ बिन्दु में—श्री त्रिपुरसुन्दरी

किसी-किसी ने कहीं-कहीं श्री पूजन दशावरण माना है। वे श्री चरण का व्यापक भाव त्रिवृत्त में ग्रहण करते हैं।

३१ ध्यान—'च'—इसका ध्यान पृष्ठ २१ पर दिया है ।

बीजाक्षर—'च'; जप—१०००; जप-स्थान—मणिपूर (नाभिचक्र); होम—कल्हार पुष्प, मधु, पञ्चमेवा और शर्करा से १०० अथवा १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोक-पाठ-संख्या—१०; श्लोक-पाठ की आहुति—३ । पूजन-यन्त्र—
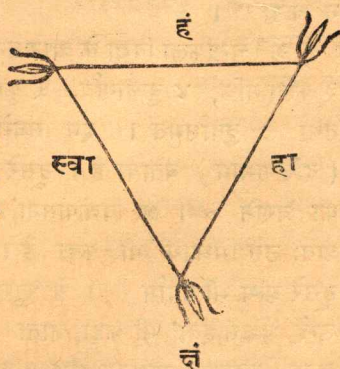
चतुःषष्ट्या तन्त्रैः सकलमतिसन्धाय भुवनं ।
स्थितस्तत्तत्सिद्धिप्रसवपरतन्त्रैः पशुपतिः ॥
पुनस्त्वन्निर्बन्धादखिलपुरुषार्थैकघटना ।
स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरदिदम् ॥३१॥

भावार्थ—हे मा, श्री विश्वेश पशुपति ने ६४ तन्त्र* निर्माण कर उनकी पृथक् पृथक् सिद्धियों की उलझन में विश्व को डाल दिया तथा आप श्री की महाविद्योपासना को गुप्त रखा परन्तु विश्वकल्याण को चाहनेवाली आप श्री के आग्रह से उन्हें आप श्री की विश्वकल्याणकारिणी उपासना को पुनः इस लोक में लाना पड़ा। उस शीघ्र फल देनेवाली उपासना से व्यक्ति की अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि सम्पूर्ण कामनायें सिद्ध होती हैं। यह आपका सर्वसिद्धिद यन्त्र सर्वतन्त्रों वतन्त्र है।

---

* श्री परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री आनन्दाश्रम नामा एक परमहंस पौरी गढ़वाल में इस शर ो मिले थे, जिनके झोले में ताड़पत्र पर लख ी एक पुस्तक थी। उसमें ३६४ तन्त्रग्रन्थों के नाम लिखे थे। उनमें से ६४ तन्त्रों का उल्लेख श्री सौन्दर्यलहरी के कर्ता ने किया ।

श्री चन्द्रकला विद्या के आठ तन्त्र हैं—१ चन्द्रकला, २ ज्योतिष्मती, ३ कलानिधि, ४ कुलार्णव, ५ कुलेश्वरी, ६ भुवनेश्वरी, ७ बार्हस्पत्य तथा ८ दुर्वासमत। इन सबमें समयाचार मतानुसार सव्यपथ (दक्षिणमार्ग) बताया है। दूसरे तन्त्रों में कुलाचार (अपसव्य पथ) का वर्णन । श्री विद्योपासना इन दोनों मार्गों से बताई गई है। अतः उसे मिश्रपथ भी कहा है। समयाचार (सव्यमार्ग) पन्थ के दूसरे ग्रन्थ भी पर्याप्त । ये 'शुभागम-पञ्चक' के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन्हें 'पञ्चसंहिता' भी कहा जाता है। इनके कर्ता पञ्चऋषि—वशिष्ठ, सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार हैं। सनन्दन संहिता अप्राप्य है। उसके स्थान में बहुत से विद्वान् शुक संहिता को ग्रहण करते हैं।

स्तोत्रकार श्री शङ्कर भगवत्पाद ने यहाँ कौन से चौंसठ तन्त्र लिये हैं, यह जानना अति कठिन है। वामकेश्वर तन्त्र के एक टीकाकार श्री लक्ष्मीधर के मतानुसार ६४ तन्त्रों के नाम इस प्रकार हैं—

३२ ध्यान—शि—इस बीजात्तर का ध्यान पृष्ठ १-२ पर दिया है।

बीजात्तर—'शि'; जपादि विधान उपर्युक्त पृष्ठ ४३ के समान।

पूजन-यन्त्र—पृष्ठ ३१ पर दिये त्रिकोण के समान, उसमें 'हं', 'शं' और 'सं' के स्थान पर क्रमशः 'हौं', 'सौं' और 'द्यौं' लिखे।

---

१ महामाया-शम्बर (परबुद्धिभ्रम-प्रकार साधन), २ योगिनीजाल-शम्बर (योगिनीसिद्धि श्मशानसेवन), ३ तत्त्व-शम्बर (रूप बदलना), ४-११ सिद्धभैरव, बटुक भैरव, कङ्काल भैरव, काल भैरव, कालाग्नि भैरव, योगिनी भैरव, महाभैरव, शक्ति भैरव (जमीन में गड़ा हुआ द्रव्यादि खोजना), १२-१९ ब्राह्मी तन्त्र, माहेश्वरी तन्त्र, कौमारी तन्त्र, वैष्णवी तन्त्र, वाराही तन्त्र, माहेन्द्री तन्त्र, चामुण्डा तन्त्र, शिवदूती तन्त्र (इनमें श्री विद्या का वर्णन है परन्तु आचार वैदिकाचार-विरुद्ध है), २०-२७ ब्रह्मयामल, विष्णुयामल, रुद्रयामल, लक्ष्मीयामल, उभयामल, स्कन्दयामल, गणेशयामल, जयद्रथयामल (कामना-सिद्धि-प्रकार), २८ चन्द्रज्ञान तन्त्र, २९ मालिनी विद्यातन्त्र, ३० महासम्मोहन तन्त्र, ३१ वामजुस्त तन्त्र (कापालिक जीवन), ३२ महादेव तन्त्र (त्याग, अघोरसिद्धि), ३३ वातुल तन्त्र, ३४ वातुलोत्तर तन्त्र, ३५ कामिका तन्त्र, ३६ हृद्भेद तन्त्र, ३७ तन्त्र भेद (परविद्याहरण), ३८ गुह्य तन्त्र (परपुण्य हरण प्रकार), ३९ कलावाद, ४० कलासार (रंग निर्णय, तत्त्वरंगादि वामाचार), ४१ कुण्डिका मत तन्त्र (औषधि आदि जड़ी-बूटी जादू), ४२ मतोत्तर तन्त्र (पारद गुण पारदादि-शोधन), ४३ वीणाख्य तन्त्र, ४४ त्रोटल तन्त्र, ४५ त्रोटलोत्तर तन्त्र (यक्षिणी ६४००० दर्शन), ४६ पञ्चामृत तन्त्र, ४७ रूपभेद तन्त्र, ४८ भूतोड्डामर तन्त्र, ४९ कुलसार तन्त्र, ५० कुलोड्डीस तन्त्र, ५१ कुल-चूड़ामणि, ५२ सर्व ज्ञानोत्तर, ५३ महाकाली तन्त्र, ५४ अरुणेश तन्त्र, ५५ मोदनीश तन्त्र, ५६ विकुण्ठेश्वर तन्त्र, ५७ पूर्वाम्नाय तन्त्र, ५८ पश्चिमाम्नाय तन्त्र, ५९ दक्षिणाम्नाय तन्त्र, ६० उत्तराम्नाय तन्त्र,

शिवः शक्तिः कामः क्षितिरथ रविः शीतकिरणः ।
स्मरो हंसः शक्रस्तदनु च परामारहरयः ॥
अमी हृल्लेखाभिस्तिसृभिरवसानेषु घटिता ।
भजन्ते वर्णास्ते तव जननि नामावयवताम् ॥३२॥

---

६१ निरुत्तराम्नाय तन्त्र, ६२ विमल तन्त्र, ६३ विमलोत्तर तन्त्र, ६४ देवीमत तन्त्र ।

वामकेश्वर तन्त्र के द्वितीय टीकाकार श्री देवव्रत का मत उक्त तन्त्रों के सम्बन्ध में इस प्रकार है—

४ से ११ तक अष्टभैरव तन्त्र, १२ से १६ तक बहुरूपाष्टक तन्त्र (अष्ट शक्ति), २० से २७ तक अष्ट यामल, २८ वें में १६ नित्याओं की उपासना, २६ वें में समुद्रोल्लंघिनी विद्या, ३० वें में सम्मोहिनी विद्यासिद्धि-प्रकार व मूर्छाकर निद्राकर प्रयोग, ३१-३२ वामाचार-विधान, ३३-३५ मन्दिरादि-निर्माण-प्रकार-शक्तिवर्द्धन-प्रयोग, ३६ षट्-चक्र-भेद-विधान, ३७-३८ परविद्या-निधन (क्षयकर) विधान, ३६ वात्स्यायन कोखशास्त्र वशीकरणादि दशक, ४० वर्णकला विद्या, ४१ स्तम्भन शक्ति, गुटिका औषधि आदि, ४२ पारद-सिद्धि-विधान (पारद-संहिता), ४३ यक्षिणी विद्या, ४४ औषधि जादू, अन्तर्दृष्टि-सिद्धि-प्रकार, ४५ यक्षिणी-दर्शन, ४६ कायाकल्प-विधानादि, ४७-५१ षट्कर्म, ५२-५६ दिगम्बर कला-विधान, षट्कर्म, ५७-६४ क्षपणक मत ।

इन्होंने इन तन्त्रों की श्री लक्ष्मीधर के समान निन्दा नहीं की है। श्री वामकेश्वर तन्त्र के तृतीय टीकाकार श्री भास्कर राय तन्त्र-गणना-क्रम में श्री लक्ष्मीधर तथा श्री देवव्रत दोनों के विरुद्ध हैं। उन्होंने ४ से ११ तक के भैरवाष्टक तन्त्रों को एक तन्त्र गिना है। ३१-३२ को एक तन्त्र गिन कर उनका नाम महोच्छुष्मन् तन्त्र लिखा है। इस प्रकार जो आठ तन्त्र कम हो गये, उनके स्थान में उन्होंने १ महालक्ष्मी

भावार्थ—शिवः क, शक्तिः ए, कामः ई, क्षितिः ल, हृल्लेखा ह्रीं; रविः ह, सोम स, स्मरः क, हंसः ह, शक्रः ल, हृल्लेखा ह्रीं; परा (शक्ति) स, मारः क, हरि ल, हृल्लेखा ह्रीं—इस प्रकार तीन कूटबीजों (कएईलह्रीं; हसकहलह्रीं; सकलह्रीं) की सृष्टि होती है। हे मा! आप श्री के नाम रूप ये तीन कूट हैं। इनका जप करने से साधक का अति हित होता है।

शक्तिः मनस्येका वचस्येका कर्मण्येका महामाया महाशक्तिरिति प्रोक्ता पूर्णकामा मनोरमा (ए)।

द्वितीय प्रकार—शिवो ह; शक्तिः स, कामः क, क्षिति ल, हृल्लेखा ह्रीं, बाकी सब उक्त प्रकारवत्। इस प्रकार उद्धार करने से उद्धृत मन्त्र यह बनता है—हसकलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं।

इस प्रकार इस श्लोक से पञ्चदशाक्षरी कादि विद्या तथा पञ्चदशाक्षरी हादि विद्या दोनों का उद्धार होता है। 'कएईलह्रीं' कूट का दैवत है क्रियाशक्ति, मन्त्र की शक्ति है अग्नि, जागृत इसकी अवस्था है, विश्व वृत्ति है और तमोगुण है। 'हसकहलह्रीं' मन्त्रखण्ड का सूर्य दैवत है, इच्छा शक्ति है, स्वप्न अवस्था है, वृत्ति तैजस है और रज गुण है। इन दोनों कूटों के मध्य की हृल्लेखा (मायाबीज) को 'रुद्रग्रन्थि' कहते हैं। तृतीय कूट 'सकलह्रीं' का दैवत परा शान्तिकला (सोम) है, ज्ञान शक्ति है, सुषुप्ति अवस्था है और सत्व गुण है। दूसरे तथा तीसरे

मत तन्त्र, २ सिद्धयोगीश्वर मत तन्त्र, ३ कुरूपिका मत तन्त्र, ४ देवरूपिका मत तन्त्र, ५ सर्ववीर मत तन्त्र, ६ विमला मत तन्त्र, ७ ज्ञानार्णव तन्त्र, ८ वीरावली तन्त्र—ये आठ तन्त्र लिखे हैं।

लेखक को यदि किसी ग्रन्थकार का मत न रुचे तो उसके स्थान में अपना सुष्ठ मत प्रकट करना उचित है। खण्डन-निन्दादि युक्त नहीं, यह इस लेखक का मत है।

मन्त्रकूट के बीच की हृल्लेखा को 'विष्णुग्रन्थि' कहा है। चतुर्थ खण्ड 'श्रीं' षोडशी महाविद्याङ्ग है। इस चतुर्थ खण्ड (श्रीं बीज) तथा तृतीय कूट के बीच की हृल्लेखा को ब्रह्मग्रन्थि कहते हैं। यह षोडशाक्षरी महामन्त्र षोडश नित्याओं का प्रतिदर्शन है। श्रीं बीज श्री महाविद्या का मूल नाम बीज है। अतः यह षोडशी मन्त्र परमश्रेष्ठ कहा गया है।

प्रतिपदा से पूर्णिमा १५ दिन तथा अमा १६, इस प्रकार प्रतितिथि में क्रमशः षोडश नित्याओं की आराधना का प्रकार कहीं कहीं कहा है। यह कुलाचार-प्रथा है। साधक योगी को सूर्य, चन्द्र के छायाक्रम में निम्नलिखित प्रकार से अभ्यास करने की विधि बताई है—

सूर्य-चन्द्रादि ग्रहों का व्यक्ति जीव की पिङ्गला तथा इडा नाड़ी पर दिन रात सतत प्रभाव पड़ता रहता है—चन्द्र का इडा पर तथा सूर्य का पिङ्गला पर। चन्द्र मानवी देह की ७२००० नाड़ियों को इडा द्वारा आप्यायित अमृत से सिंचन करता है। सूर्य पिङ्गला-द्वारा उस अमृत को कुण्डलिनी कुण्ड से एकत्र करता है अर्थात् इडा नाड़ी द्वारा चोषित वायु जीवन-वृद्धिकर है। पिङ्गला जीवन-पोषिका है। मानवी जीवन के लिये यथा मात्रा इन दोनों की आवश्यकता है। योगी कुम्भक से इडा-पिङ्गला दोनों की क्रियाओं को रोकता है क्योंकि प्रकृति में से इडा-द्वारा चोषित जीवनामृत सम्पूर्ण नाड़ियों में फैलकर पिङ्गला-द्वारा आधारचक्र में संग्रहित हो मूल जीवन-शक्ति श्री कुण्डलिनी में जीवनशक्ति को बढ़ाता है।

कुम्भक से कुण्डलिनी किस प्रकार जाग्रत होती है—कुम्भक-द्वारा इडा-पिङ्गला की क्रिया के रुकने से मूलाधार में जीवन-शक्तिवृद्धि (अमृत के संचय की क्रिया) बन्द हो जाती है। फलतः मूलाधारस्थ कुलकुण्ड में अमृत सूख जाता है। जीवन-शक्ति श्री कुण्डलिनी

में नवीन पोषण न मिलने से सोती हुई त्रिवलयाकारा कुण्डलिनी कुम्भक-द्वारा रुके हुए प्राण की उष्णता के कारण विकल होकर जाग पड़ती है अर्थात् प्रशान्त जीवन-तन्तु में एक प्रकार की सनसनाहट उत्पन्न हो जाती है। वह जीवन-तन्तु छिड़ी हुई नागिनी के समान सुषुम्ना मार्ग से उड़ तीनों ग्रन्थियों का भेदकर सहस्रार पर्यन्त सीधा खड़ा हो जाता है। इस जीवन-तन्तु के खड़े होते ही जीवनामृतानन्द-प्रवाह सारे शरीर में फैलकर साधक आनन्द में गद्गदित हो जाता है। उस आनन्द की एकाग्रता में मस्त होकर साधक सच्चिदानन्दमय आत्मानन्द में लय होने का लक्ष्यानुभवी बनता है। यही परमा समाधि है।

३३ ध्यान—'स्म' = स + म—इन दोनों बीजों का ध्यान क्रमशः पृष्ठ १३ और १६ पर दिया है।

बीजाक्षर—'स्म'; जपसंख्या—१०००; जप-स्थान—मणिपूरचक्र; होम—कल्हार कुसुम, मधु, पञ्च-मेवा और शर्करा से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोक पाठ-संख्या—१०; श्लोकपाठ आहुति—३; पूजन-यन्त्र—
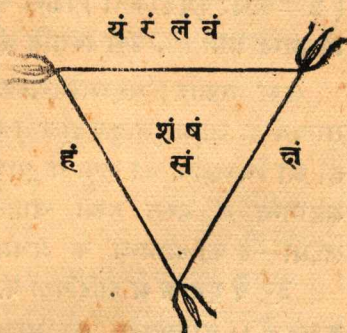
स्मरं योनिं लक्ष्मीं त्रितयमिदमादौ तव मनो-
र्निधायैके नित्ये निरवधिमहाभोगरसिकाः॥
भजन्ति त्वां चिन्तामणिगुणनिबद्धाक्षवलयाः।
शिवाग्नौ जुह्वन्तः सुरभिघृतधाराऽऽहुतिशतैः॥३३॥

भावार्थ—हे मा अनन्ता ! आप श्री के मन्त्र में प्रथम कामबीज 'क्लीं', योनिबीज 'ह्रीं' और लक्ष्मीबीज 'श्रीं'—इन तीन बीजों का संयोग कर अनन्त भोग महानन्द की इच्छावाले आपके बहुत से साधक उत्तम गाय के घी की धारा से शिवाग्नि में सैकड़ों आहुतियाँ देते हुए चिन्तामणि के मनकों की माला से श्री मन्त्र का जप करते हुए आप श्री की आराधना करते हैं।

रसिका:—र + स + इ + क + अ = र—अग्निबीज, स—शक्तिबीज, इ—परमानन्दवर्द्धन नित्योत्साहवर्द्धन, क—कामबीज, अ—आदि स्वरबीज व्यापक, विसर्ग: शिव चिद्वीज। भाव यह है कि तेजोमयी, व्यापक परमानन्दमयी, नित्योत्साहविवर्द्धिनी, पूर्णकामा, शिवमयी चिच्छक्ति के उपासकों का नाम रसिक है।

भोग--भ + उ + ग = कुण्डलिनी के सुप्त होते हुए भी (उ = अध: कुण्डलिनी) जिस लक्ष्य में जागृत कुण्डलिनी का महानन्द प्राप्त हो, उस स्थिति को साधक भोग-लक्ष्य कहते हैं।

इस प्रकार 'महाभोगरसिका:' से उन महासाधकों से तात्पर्य है, जो प्रसुप्त कुण्डलिनी महाशक्ति को जागृत किये बिना ही श्री चिच्छक्ति की कृपा के पात्र बनकर योग की एकाग्रता के महानन्द में मस्त हुआ चाहते हैं। स्मर--क, योनि--ए, लक्ष्मी—ई को श्रीमन्त्र के प्रथम संयोजित करने का भाव है।

३२ वें श्लोक में हादिविद्या कही है, अब इसमें कादिविद्या का कथन है। हादिविद्या को मोक्षदायिनी विद्या कहते हैं। यहाँ कादिविद्या को सर्वकामप्रदा कहा है।

कहीं-कहीं "चिन्तामणिगुणनिबद्धाक्षरलय:" पाठ है, जिसका अर्थ अक्षर द्वारा मोक्षप्राप्ति होता है। अक्षर = शब्दब्रह्म अर्थात् सत-रज-तम त्रिगुणयुक्ता चित्कला। चिन्तामणिमाला = लोम-विलोम मातृका जपमाला-प्रकार, जिसका सुमेरु 'क्ष' है।

सुरभि = कामधेनु। सुरभि का अर्थ यदि यहाँ सुगन्ध लिया जाय तो यह अर्थ होगा—श्री महाविष्णु के निवासस्थान गोलोक की अमृतगन्ध। शिवाग्नि = योगाग्नि—मणिपूर की योगाग्नि में। इस हवन-मख को "जुह्वन्तः सुरभिघृतधाराशतयुतैः" इन शब्दों से अन्तर्यज्ञ कहा है। सहस्रार की एकाग्रता-एकात्मता के पहले उन्मनी की स्थिति में इस अन्तर्याग की पूर्णाहुति होती है।

३४ ध्यान—'श'—इसका ध्यान पृष्ठ १ पर दिया है।

बीजाक्षर—'श'; जपसंख्या—१०००; जप-स्थान—मणिपूरचक्र; होम—कल्हार कुसुम, मधु, पञ्चमेवा और शर्करा से १०० अथवा १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोकपाठ-आहुति—३; पूजन-यन्त्र—त्रिकोण उसके मध्य में 'श्रीं'।

शरीरं त्वं शम्भोः शशिमिहिरवक्षोरुहयुगं।
तवात्मानं मन्ये भगवति भवात्मानमनघं॥
अतः शेषः शेषीत्ययमुभयसाधारणतया।
स्थितः सम्बन्धो वां समरसपरानन्दपरयोः॥३४॥

भावार्थ—हे मा, हे सर्वेश्वरि! आप श्री सूर्य-शशि-रूप दो कुच-सहित श्री शिव-देह ही हो। आप श्री की दिव्यात्मा कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ भगवान् शिव की ही आत्मा है। अतः मूलचिच्चैतन्य तथा तत्प्रवाहस्पन्द का परानन्द पर-सम्बन्ध समरस में स्थित है। 'भवात्मानं' के स्थान में कहीं कहीं 'नवात्मानं' पाठ है। श्री शिव को नवात्मा कहा है। शास्त्रों में श्री भगवान् शिव का नवव्यूहयुत वर्णन है। यथा—

१ काल—निमेष मात्र से अनन्तपर्यन्त समय-लक्ष्य (चन्द्र-सूर्य कलाधीन हैं); २ कुल—इन्द्रधनुष के सप्तरङ्ग; ३ नाम—पदार्थ संज्ञा (गिरि, वृक्ष, घट, पटादि); ४ ज्ञान—स्थूल सूक्ष्मादि

पदार्थ-ज्ञान; ५ चित्त—अहङ्कार, चित्, बुद्धि, महत्, मन; ६ नाद—परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी, स्वर; ७ विन्दु—षट्चक्र मूलाधारादि; ८ कला—पञ्चाशार्णरूप, स्वर-वर्णमाला; ९ जीव—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार की चैतन्य-समष्टि (भोक्ता)। श्री विश्वेश्वरी विश्वमाता भी नवव्यूहात्मिका हैं। यथा—वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, अम्बिका—ये श्रीचक्र में निम्न कोणवाले चार त्रिकोणों में स्थित महाशक्तियाँ हैं। ऊर्ध्व कोणवाले पाँच त्रिकोणों की शक्तियों के नाम ये हैं—इच्छा, ज्ञान, क्रिया, शान्ता, परा। इन दोनों, शिवात्मक तथा शक्त्यात्मक नव (४+५) त्रिकोणों के मिलने से पूरा श्रीचक्र बनता है, एक से नहीं। अतः शिव-शक्ति की एकता ही श्री विश्वेश महेश्वर का स्वरूप है। उन दोनों का अलग अलग भाव में पूर्णतया दर्शन-वर्णन हो ही नहीं सकता। कोई कोई अनुभवी शिव-शक्ति को आधाराधेय के रूप में वर्णन करते हैं।

३५ ध्यान—म—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ १६ पर दिया है।

बीजाक्षर—'म'; जपसंख्या—१०००; जप-स्थान—मणिपूरचक्र; होम—कल्हार कुसुम, मधु, पञ्चमेवा और शर्करा से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोकपाठ-आहुति—३; पूजन-यन्त्र—त्रिकोण उसके मध्य में 'ह्रीं'।

मनस्त्वं व्योम त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि।
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां नहि परम्॥
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा।
चिदानन्दाकारं शिवयुवति भावेन बिभृषे॥३५॥

भावार्थ—हे विश्वमयी मा! तू ही मन है, तू ही व्योम, मरुत, अग्नि, जल, पृथ्वी बन जाती है। तेरे विश्वव्यापी अनेक

रूपों के परे कुछ भी नहीं है। आप विश्वरूप धारण करती हो तथा सूक्ष्मभाव में चिदानन्दाकार-रूप में स्थिर रहती हो। यहाँ श्री भगवती मा की व्यापिनी अष्टमूर्ति का भाव है--१ सूर्य, २ चन्द्र, ३ मन और ४-८ पञ्चतत्त्व। इन अष्ट मूर्तियों में श्री विश्वेशी का चिदानन्द व्यापक भाव ओतप्रोत भरा हुआ है। यही श्री विश्वजननी का विश्वव्यापक स्वरूप है। वह विश्वव्यापिनी मा आज्ञाचक्र में मन-बुद्धि-रूप से, विशुद्धचक्र में आकाश और मूलवायु-रूप से, अनाहत में वायु और अग्निरूप से, मणिपूर में अग्निरूप से, स्वाधिष्ठान में जलरूप से तथा मूलाधार में भूरूप से व्याप्त है। विश्वरूप-धारण में वह महामाया परिणमन के अण्वण्वाङ्ग में विश्वतैजस, प्रज्ञा, विराट्, हिरण्यगर्भादि में व्यापिनी सर्वमयी है; सर्वविश्वकर्त्री, पालिका तथा संहर्त्री है।

३६ ध्यान—त—इसका ध्यान पृष्ठ ४ पर दिया है।

बीजाक्षर—'त'; जप—१०००; जप-स्थान—मणिपूर (नाभिचक्र); होम—कल्हार कुसुम, मधु, पञ्चमेवा और शर्करा से १०० अथवा १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोक-पाठ-संख्या—१०; श्लोक-पाठ की आहुति—३। पूजन-यन्त्र—
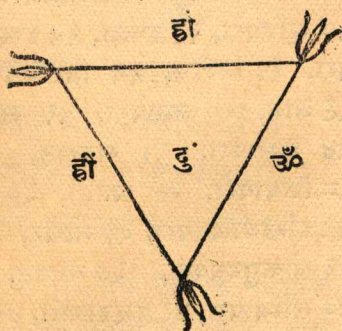
तवाज्ञाचक्रस्थं तपनशशिकोटिद्युतिधरं।
परं शम्भुं वन्दे परिमिलितपार्श्वं परचिता॥
यमाराध्यन्भक्त्या रविशशिशुचीनामविषये।
निरातङ्के लोको निवसति हि भालोकभवने॥३६॥

भावार्थ—दिव्यचक्रस्था हे मा ! आप श्री के लीलादेहस्थ आज्ञाचक्र में स्थित कोटि सूर्य तथा चन्द्र के समान प्रकाशमान, वामपार्श्वागता पराचिच्छक्ति-सहित उन महाशिव को बारम्बार (यह सेवक) प्रणाम करता है, जिनकी भक्तिपूर्वक आराधना करने से साधक निरातङ्क होकर सूर्य-शशि-काश-पर महादिव्य लोक में निवास पाता है। आज्ञाचक्रे—आप श्री की आज्ञा में रहनेवाले अनन्त विश्वचक्र में आपके साथ व्यापक श्री भगवान् शिव अथवा आज्ञाचक्र—भृकुटि-मध्य में द्विदल चक्र। इस चक्र का दैवत है—पर शम्भुनाथ चित्पराम्बा-पराचिता-चित्पराम्बा।

परशम्भुनाथ चित्पराम्बा की आराधना ६४ मानस मयूखाओं-सहित होती है।

६४ मानस मयूखायें—१ पर, २ परा, ३ भर, ४ भरा, ५ चित्, ६ चित्परा, ७ महामाया, ८ महामायापरा, ९ सृष्टि, १० सृष्टिपरा, ११ इच्छा, १२ इच्छापरा, १३ स्थिति, १४ स्थिति-परा, १५ निरोध, १६ निरोधपरा, १७ मुक्ति, १८ मुक्तिपरा, १९ ज्ञान, २० ज्ञानपरा, २१ सत, २२ सत्परा, २३ असत, २४ असत्परा, २५ सदसत, २६ सदसत्परा, २७ क्रिया, २८ क्रियापरा, २९ आत्मा, ३० आत्मपरा, ३१ इन्द्रियाश्रय, ३२ इन्द्रियाश्रयपरा, ३३ गोचर, ३४ गोचरपरा, ३५ लोकमुख्या, ३६ लोकमुख्यपरा, ३७ वेदवत, ३८ वेदवत्परा, ३९ सम्विद, ४० सम्वित्परा, ४१ कुण्डलिनी, ४२ कुण्डलिनीपरा, ४३ सौषुम्नी, ४४ सौषुम्नीपरा, ४५ प्राणसूत्रा, ४६ प्राणसूत्रापरा, ४७ स्पन्द, ४८ स्पन्दपरा, ४९ मातृका, ५० मातृकापरा, ५१ स्वरोद्भवा, ५२ स्वरोद्भवपरा, ५३ वर्णजा, ५४ वर्णजापरा, ५५ शब्दजा, ५६ शब्दजापरा, ५७ वर्णज्ञा, ५८ वर्णज्ञानपरा, ५९ वर्गजा,

६० वर्गजापरा, ६१ संयोगजा, ६२ संयोगजापरा, ६३ मन्त्र-विग्रहा, ६४ मन्त्रविग्रहापरा।

इस ३६ वें श्लोक से प्रारम्भ कर ४१ वें श्लोक तक षट्चक्र के ध्यान-क्रम का वर्णन है।

३७ ध्यान—वि=व् + इ—इन दोनों वर्णबीजों का ध्यान क्रमशः पृष्ठ ७ और २ पर दिया है।

बीजाक्षर—'वि'; जप--१०००; जप-स्थान—मणिपूर; होम—कल्हार कुसुम, मधु, पञ्चमेवा और शर्करा से १०० अथवा १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोक-पाठ—१०; श्लोकपाठ आहुति—३; पूजनयन्त्र-

विशुद्धौ ते शुद्धस्फटिकविशदं व्योमजनकं।
शिवं सेवे देवीमपि शिवसमानव्यवसितां॥
ययोः कान्त्या यान्त्या शशिकिरणसारूप्यसरणिं।
विधूतान्तर्ध्वान्ता विलसति चकोरीव जगती॥३७॥
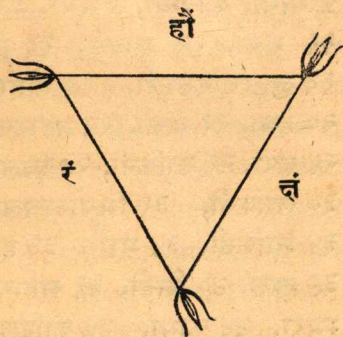
भावार्थ—हे मा! आप श्री के लीलामय देह के विशुद्धि (कण्ठ) चक्र में आकाश (शून्य) के उत्पन्न करनेवाले, शुद्ध स्फटिक-सम शुभ्र वर्णवाले (समान पद-धारिणी भगवती श्री-सहित) श्री भगवान् महाशिव की यह सेवक आराधना करता है। जिनकी एकानन्दमयी सारूपता, रूपचन्द्रज्योत्सना के प्रभाव से निर्मलान्तःकरण होकर विश्व चकोरीवत् मस्त हो

जाता है (अर्द्धनारीनटेश्वर भाव)। इसमें दैवत व्योमेश्वर तथा श्री व्योमेश्वर्यम्बा हैं।

व्योमेश्वरनाथ व्योमेश्वर्यम्बा की आराधना ७२ नाभस मयूखाओं सहित होती है--

७२ नाभस मयूखायें—१ हृदया, २ कौलिनी, ३ धरा, ४ कान्ता, ५ भोगा, ६ विश्वा, ७ भया, ८ योगिनी, ९ महा, १० ब्रह्मसारा, ११ शवा, १२ शाबरी, १३ द्रवा, १४ कालिका, १५ रसा, १६ जुष्टाचाण्डाली, १७ मोहा, १८ अघोरेशी, १९ मनोभवा, २० हेला, २१ केका, २२ महारक्ता, २३ ज्ञानगुह्या, २४ कुब्जिका, २५ खरा, २६ डाकिनी, २७ ज्वलना, २८ शाकिनी, २९ महाकुला, ३० लाकिनी, ३१ भियोज्ज्वला, ३२ काकिनी, ३३ तेजसा, ३४ शाकिनी, ३५ मूर्धा, ३६ हाकिनी, ३७ वामू, ३८ णपघ्नी, ३९ कुला, ४० सिंही, ४१ संहारा, ४२ कुलाम्बिका, ४३ विश्वम्भरा, ४४ कामा, ४५ कौटिला, ४६ कूनमाता, ४७ गालवा, ४८ कङ्काटि, ४९ व्योमा, ५० व्योमचारा, ५१ श्वसना, ५२ नादा, ५३ खेचरी, ५४ महादेवी, ५५ बहुला, ५६ महत्तरी, ५७ तारा, ५८ कुण्डलिनी, ५९ कुलातीता, ६० कुलेशी, ६१ अजा, ६२ ईधिका, ६३ अनन्ता, ६४ दीपिका, ६५ एषा, ६६ रेचिका, ६७ शिखा, ६८ मोचिका, ६९ परमा, ७० परा, ७१ परपरा, ७२ चित।

३८ ध्यान—'स'—इसका ध्यान पृष्ठ १३ पर दिया है।

बीजाक्षर--'स'; जपसंख्या--१०००; जप-स्थान—मणिपूर; होम--कल्हार कुसुम, मधु, पञ्चमेवा और शर्करा से १०० या १०; तर्पण--१०; मार्जन—१०; श्लोक-पाठ--१०; श्लोक-पाठ आहुति—३; पूजन-यन्त्र--पृष्ठ ५३ पर दिये त्रिकोण के समान, उसमें 'ह्रीं', 'ह्रीं', 'दुं', और 'ॐ' की जगह क्रमशः 'हं', 'हं', 'सः' और 'हं' लिखे।

समुन्मीलत्संवित्कमलमकरन्दैकरसिकं ।
भजे हंसद्वन्द्वं किमपि महतां मानसचरं ॥
यदालापादष्टादशगुणितविद्यापरिणति—
र्यदादत्ते दोषाद् गुणमखिलमद्‌भ्यः पय इव ॥३८॥

भावार्थ—हे शिव-शक्ति-स्वरूपा मां ! इन दो महाहंसों की मैं आराधना करता हूँ, जो अनन्त ब्रह्माण्ड-रूप खिलते हुए कमलों के बुद्धि-रूप मकरन्द के रसिक हैं; जो श्रेष्ठ महापुरुषों के मन-रूप मानस-सर में निवास करते हैं (तथा साधक भक्त की बुद्धि के प्रेरक हैं—तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्) और जिनके मधुर आलाप से अष्टादश (दश महाविद्यायें तथा अष्टशक्ति) विद्यायें उत्पन्न होती हैं तथा जिनमें प्रकृति के गुण-दोष-मिश्रण में से गुणपृथक्कारिणी शक्ति है (यथा हंस में पय-जल-पृथक्कारिणी शक्ति) ।

यह अनाहत चक्र का वर्णन है। हंसद्वन्द्वं—हंसः सोहं । 'हंसः सोहं' से संपुटित त्रिकूट का जप अनाहत चक्र में कहा है। मानस—मन—मानसरोवर, जिसके किनारे हंस रहते हैं। यदालापात्—शिव-शक्ति-वार्ता-रूप से वेदागमादि प्रकट हुए कहे जाते हैं।

अष्टादशविद्यायें—१ ऋक्, २ यजु, ३ साम, ४ अथर्व, ५ शिक्षा, ६ कल्प, ७ व्याकरण, ८ निरुक्त, ९ छन्द, १० ज्योतिष, ११ पूर्व तथा उत्तर मीमांसा, १२ न्याय, १३ सांख्य, १४ धर्मशास्त्र, १५ आयुर्वेद, १६ शिल्प, १७ धनुर्वेद, १८ गान्धर्व वेद (कल्प—पदार्थ-विज्ञान, इंजीनियरिङ्ग आदि) ।

इसका ध्यान-दैवत् श्री हंसेश्वरनाथ तथा श्री हंसेश्वर्यम्बा हैं। इनकी आराधना ५४ वायव्य मयूखाओं-सहित होती है। यथा—

५४ वायव्य मयूखायें—१ खगेश्वरी, २ भद्रा, ३ कूर्मा, ४ आधारा, ५ मेषा, ६ कोषा, ७ मीना, ८ मल्लिका, ९ ज्ञाना, १० विमला, ११ महानन्दा, १२ शर्वरी, १३ तीव्रा, १४ लीला, १५ प्रिया, १६ कुमुदा, १७ कालिका, १८ मेनका, १९ डामरा, २० डाकिनी, २१ कामदा (रामरा), २२ राकिनी, २३ लामरा, २४ लाकिनी, २५ कामरा, २६ काकिणी, २७ सामरा, २८ शाकिनी, २९ हामरा, ३० हाकिनी, ३१ आधारेशा, ३२ राका, ३३ चक्रेशा, ३४ विन्दुस्था, ३५ कुकुरा, ३६ कुला, ३७ मायाश्रीशा, ३८ कुब्जिका, ३९ हृदीशा, ४० कामकला, ४१ शिरसा, ४२ कुलदीपिका, ४३ शिक्षेशा, ४४ सर्वेशा, ४५ वरदा, ४६ बहुरूपा, ४७ अश्लेषा, ४८ महत्तरा, ४९ परहा, ५० मङ्गला, ५१ पराधिष्ठाना, ५२ परकर्मिणी, ५३ देवपूज्या, ५४ रामा (रमा)।

यह विश्व अनन्त है। इसका आदि-अन्त नहीं। विश्वोत्पत्ति का अर्थ है क्षय हुए दो-चार सौर-मण्डलों की पुनः सृष्टि। बीजाणुओं तथा अण्वणुओं में उत्पत्ति और लय प्रत्येक क्षण इस महाविश्व में हुआ ही करता है। अतः तत्त्वीकरण गतिशक्ति में चित्स्पन्द प्रत्येक क्षण होता रहता है। इस विश्व में विश्राम करती हुई श्री विश्वेश्वरी सदा जागृत और पूर्णगतिमयी है। उस अनन्ता महाशक्ति की विचित्र तथा अद्भुत क्रिया का वर्णन करने में ईशादि की वाणी भी समर्थ नहीं। वह अवर्णनीया महापरापरशक्ति है।

३९ ध्यान—'त'—इसका ध्यान पृष्ठ ४ पर दिया है।

बीजाक्षर--'त'; जप-संख्या--१०००; जप-स्थान--मणिपूर; होम--कल्हार कुसुम, मधु, पञ्च-मेवा और शर्करा से १०० या १०; तर्पण--१०; मार्जन--१०; श्लोक-पाठ--१०; श्लोकपाठ आहुति-३; पूजन-यन्त्र--
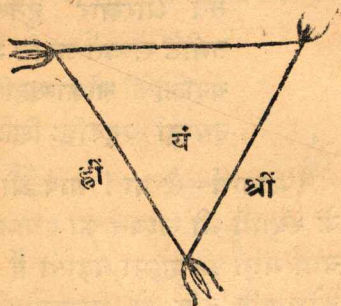
तव स्वाधिष्ठाने हुतवहमधिष्ठाय निरतं।
तमीडे सम्वर्तं जननि महतीं तां च समयां॥
यदालोके लोकान्दहति महति क्रोधकलिते।
दयार्द्रा यद्दृष्टिः शिशिरमुपचारं रचयति॥३९॥

तडित्वन्तं शक्त्या तिमिरपरिपन्थिस्फुरणया।
स्फुरन्नानारत्नाभरणपरिणद्धेन्द्रधनुषम्॥
तव श्यामं मेघं कमपि मणिपूरैकशरणं।
निषेवे वर्षन्तं हरमिहिरतप्तं त्रिभुवनं॥४०॥

उक्त ३६ वें और ४० वें श्लोक को बदलना पड़ा है क्योंकि श्री शङ्कर भगवत्पाद ने स्वाधिष्ठान चक्र में अग्नितत्त्व और मणिपूर में जलतत्त्व का भाव कहा है। परन्तु योगाभ्यासी को इससे विपरीत अनुभव होता है। वे मणिपूर में अग्नितत्त्व और स्वाधिष्ठान में जलतत्त्व-भाव का अनुभव करते हैं। अतः इन दोनों श्लोकों को निम्नरूप में पढ़ा जाना चाहिए--

तव श्रीरत्नारे हुतवहमधिष्ठाय निरतं।
तमीडे सम्वर्तं जननि महतीं तां च समयाम्॥
यदालोके लोकान्दहति महति क्रोधकलिते।
दयार्द्रा यद्दृष्टिः शिशिरमुपचारं रचयति॥ ३९॥

भावार्थ—हे मा! आप श्री के मणिपूर चक्र में अग्नितत्त्व के स्वामी श्री सम्वर्त का स्थान है और श्री समयाम्बा उनके वाम भाग की शोभा बढ़ाती हैं। जब श्री संवर्त भगवान् अपनी क्रोधमयी दृष्टि से विश्वलोकों का दहन करते हैं तब श्री समयाम्बा रूप से स्थित आप श्री की दयार्द्र दृष्टि उन लोकों को शिशिरवत् ठण्डक देती है। आप श्री के सेवकों को प्रलयाग्नि भी शिशिर ऋतु में अग्निसेवनवत् सुखकर हो जाती है। श्री भगवान् सम्वर्तेश्वरनाथ तथा श्री समयाम्बा की आराधना ६२ तैजस मयूखाओं सहित की जाती है।

६२ तैजस मयूखायें—१ परापरा, २ चण्डेश्वरा, ३ परमा, ४ चतुष्मती, ५ तत्परा, ६ गुह्यकाली, ७ अपरा, ८ सम्वर्ता, ९ चिदानन्दा, १० नीलकुब्जा, ११ अघोरा, १२ गन्धा, १३ समरसा, १४ रसा, १५ ललिता, १६ समरा, १७ स्वच्छा, १८ स्पर्शा, १९ भूतेश्वरा, २० शब्दा, २१ आनन्दा, २२ डाकिनी, २३ प्रभानन्दा, २४ आलस्या, २५ रत्नडाकिनी, २६ चक्रडाकिनी, २७ योगानन्दा, २८ पद्मडाकिनी, २९ अतीता, ३० कुब्जडाकिनी, ३१ स्वादा, ३२ प्रचण्डाडाकिनी, ३३ योगेश्वरा, ३४ चण्डा, ३५ पीठेश्वरा, ३६ कोशला, ३७ कुलकौलेश्वरा, ३८ पावनी, ३९ कुक्षेश्वरा, ४० समया, ४१ श्रीकण्ठा, ४२ कामा, ४३ अनन्ता, ४४ रेवती, ४५ शाङ्करा, ४६ ज्वाला, ४७ पिङ्गला, ४८ कराला, ४९ मदाख्या, ५० कुब्जिका, ५१ करालरात्रिगुरु, ५२ परा, ५३ सिद्धागुरु, ५४ शान्त्यातीता, ५५ रत्नगुरु, ५६ शान्ता,

५७ शिवागुरु, ५८ विद्या, ५९ मेलगुरु, ६० प्रतिष्ठा, ६१ समयागुरु, ६२ निवृत्ति ।

४० ध्यान—'त'—इसका ध्यान पृष्ठ ४ पर दिया है ।

बीजाक्षर—'त'; जप-संख्या—१०००; जप-स्थान—मणिपूर; होम—कल्हार कुसुम, मधु, पञ्च-मेवा और शर्करा से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोक-पाठ—१०; श्लोक-पाठ आहुति—३ । पूजन-यन्त्र—
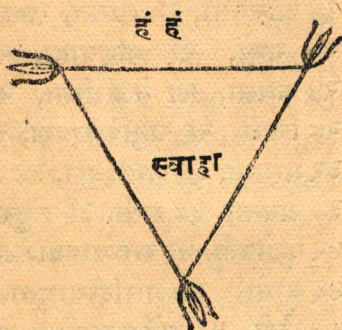
तडित्वन्तं शक्त्या तिमिरपरिपन्थिस्फुरणया ।
स्फुरन्नानारत्नाभरणपरिणद्धेन्द्रधनुषम् ॥
तव श्यामं मेघं कमपि स्वाधिष्ठानशरणं ।
निषेवे वर्षन्तं हरमिहिरतप्तं त्रिभुवनं ॥ ४० ॥

भावार्थ—हे मा ! तेरे अनन्त रूप हैं। मैं तेरे उस स्वरूप की बारम्बार वन्दना करता हुआ आराधना करता हूँ, जो श्याम मेघवत् है और आप श्री के स्वाधिष्ठान चक्र में सदा निवास करता है तथा जिसमें शक्तिरूपा ऐसी विद्युत् चमकती है, जिसकी स्फुरणा तिमिरहारिणी । श्री महाकुण्डलिनी के सिर पर जटित दिव्य रत्नों का काश उस स्थान में दिव्य इन्द्रधनुषवत् चमक रहा है और वहाँ से अग्नि-सूर्य-प्रतप्त त्रिभुवन पर अमृत की धारा बरसती है ।

यहाँ के दैवत् श्री भगवान् मेघेश्वरनाथ और श्री अमृतेश्वर्यम्बा हैं। इनकी आराधना ५२ आप्यमयूखाओं सहित की जाती है ।

५२ आप्यमयूखायें—१ सद्योजाता, २ माया, ३ वामदेवा, ४ श्री, ५ अघोरा, ६ पद्मा, ७ तत्पुरुषा, ८ अम्बिका, ९ अनन्ता, १० निवृत्ति, ११ अनाथा, १२ प्रतिष्ठा, १३ जनाश्रिता, १४ विद्या, १५ अचिन्त्या, १६ शान्ता, १७ शशिशेखरा, १८ उमा, १९ तीव्रा, २० गङ्गा, २१ मणिवाहा, २२ सरस्वती, २३ अम्बुवाहा, २४ कमला, २५ तेजोधीशा, २६ पार्वती, २७ विद्यावागीश्वरा, २८ चित्रा, २९ चतुर्विधेश्वरा, ३० सुकमला, ३१ उमागङ्गेश्वरा, ३२ मन्मथा, ३३ कृष्णेश्वरा, ३४ श्रीया, ३५ श्री कान्ता, ३६ लया, ३७ अनन्ता, ३८ सती, ३९ शङ्करा, ४० रत्नमेखला, ४१ पिङ्गला, ४२ यशोवती, ४३ साध्याख्या, ४४ हंसानन्दा, ४५ परादिव्यायुगा, ४६ वामा, ४७ मारादिव्यायुगा, ४८ ज्येष्ठा, ४९ पीठायुगा, ५० रौद्री, ५१ सर्वेश्वरा, ५२ सर्वमयी। ये जलतत्त्व की ५२ मयूखायें हैं।

४१ ध्यान—त—इस वर्णाक्षर का ध्यान पृष्ठ ४ पर दिया है।

बीजाक्षर—'त'; जप-संख्या—१०००; जप-स्थान—मणिपूर; होम—कल्हार कुसुम, मधु, पञ्चमेवा और शर्करा से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोकपाठ आहुति—३; पूजन-यन्त्र—त्रिकोण, उसके मध्य में 'ह्रीं'।

तवाधारे मूले सह समयया लास्यपरया।
नवात्मानं मन्ये नवरसमहाताण्डवनटं॥
उभाभ्यामेताभ्यामुदयविधिमुद्दिश्य दयया।
सनाथाभ्यां जज्ञे जनकजननीमज्जगदिदं॥४१॥

भावार्थ—हे मा! आप श्री के मूलाधार चक्र में नवरसमय महाताण्डव नृत्य करते हुये श्री आदिनट भगवान् शिव तथा उनके साथ लास्य नृत्य करती हुई श्री समया भगवती

को नमस्कार है, बारम्बार नमस्कार है। इस विश्व को ये दो माता-पिता जगदुत्पत्ति-हेतु से उनकी विश्वकल्याणकारिणी दया में से ही मिल गये हैं।

सह समयया—शिव-शक्ति-एकता का वाचक है। श्री मा भगवती तथा भगवान् शिव अधिष्ठान, अवस्थान, अनुष्ठान, रूप, गुण, नामादि सब प्रकार से एक ही हैं। समय-समय की उपासना-विधि को समय मत कहते हैं। जब श्री भगवान् आदि-नट ताण्डव नृत्य में मग्न हो जाते हैं और श्री लास्येश्वरी महाशक्ति लास्य नृत्य में मग्न होती हैं एवं नृत्य करते-करते दोनों सामरस्य में तल्लीन हो जाते हैं तब उस मिथुनानन्द से विश्वसृष्टि की क्रिया बढ़ती है। कौलमतानुसार बिन्दु आज्ञाचक्र के त्रिकोण में है। इससे कौल त्रिकोण में बिन्दु का पूजन करते हैं। कौल महाशक्ति कुण्डलिनी को कौलिनी भी कहते हैं। पिण्डवत् यह ब्रह्माण्ड और यह सौरमण्डल षट्चक्र तथा श्रीचक्र के लक्ष्य से बँटा हुआ है। यथा—

भू	=	मूलाधार	पृथ्वी	=	भूपुर
भुवः	=	स्वाधिष्ठान	बुध	=	१६ दल पद्म
स्वः	=	मणिपूर	मङ्गल	=	८ दल पद्म
महः	=	अनाहत	बृहस्पति	=	१४ त्रिकोण चक्र
जनः	=	विशुद्ध	हर्षल	=	दोनों दशार
तपः	=	आज्ञा	नेप्चून	=	अष्टार
सत्यं	=	सहस्रार	शुक्र	=	मूल त्रिकोण

बिन्दु = व्यापिका चिच्छक्ति

श्री शङ्कर भगवत्पाद स्वामी जी का मत है (श्लो० ७) कि श्री महापरा विद्या मा मणिपूर चक्र में ही अमुक रूप से प्रकट होती है। कुछ भी हो, मा अनन्त अमोघ सर्वमयी है। वह अपने भक्तों की इच्छानुसार कहीं किसी भी रूप में प्रकट होती

है। उसकी लीला वही जाने। इस चक्र के दिव्य दैवत भगवान् श्री आदि नटनाथ तथा श्री लास्येश्वर्यम्बा हैं। इनकी आराधना ५६ पार्थिव मयूखाओं सहित होती है।

५६ पार्थिव मयूखाएँ—१ उड्डीश्वर, २ उड्डीश्वरी, ३ जलेश्वर, ४ जलेश्वरी, ५ पूर्णेश्वर, ६ पूर्णेश्वरी, ७ कामेश्वर, ८ कामेश्वरी, ९ श्री कण्ठ, १० गङ्गा, ११ अनन्ता, १२ स्वरसा, १३ शङ्करा, १४ मति, १५ पिङ्गला, १६ पाताल देवी, १७ नारदाख्या, १८ नादा, १९ आनन्दा, २० डाकिनी, २१ आलस्या, २२ शाकिनी, २३ महानन्दा, २४ लाकिनी, २५ योग्या, २६ काकिनी, २७ अतीता, २८ साकिनी, २९ त्रिपदा, ३० हाकिनी, ३१ आधारेशा, ३२ रक्ता, ३३ चक्रीशा, ३४ चण्डा, ३५ कुरङ्गीशा, ३६ कराला, ३७ मदघूशा, ३८ महोच्छुष्मा, ३९ अनादि विमला, ४० मातङ्गी, ४१ सर्वज्ञा विमला, ४२ पुलिन्दा, ४३ योगविमला, ४४ शम्बरी, ४५ सिद्धविमला, ४६ वाचापरा, ४७ समयविमला, ४८ कुलालिका, ४९ मित्रेशा, ५० कुब्जा ५१ उड्डीशा, ५२ लब्धा, ५३ षष्ठीशा, ५४ कुलेश्वरी, ५५ चर्याधीशा, ५६ अजा।

ताण्डव नृत्य—लयात्मक नृत्य—भगवान् शिव ने किया। लास्यनृत्य—सृष्ट्यात्मक नृत्य—भगवती मा ने किया। इन दोनों नृत्यों में एक शिवात्मक तथा एक शक्त्यात्मक है।

४२ ध्यान—ग—दाडिमीपुष्पसङ्काशां चतुर्बाहुसमन्वितां।
रक्ताम्बरधरां नित्यां रक्तालङ्कारभूषितां॥
एवं ध्यात्वा गकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
पञ्चप्राणमयं वर्णं सर्वशक्त्यात्मकं प्रिये॥
तरुणादित्यसङ्काशां कुण्डलीं प्रणमाम्यहं।
अग्राकुञ्चितरेखा या गणेशी सा प्रकीर्त्तिता॥
ततो दक्षगता या तु कमला तत्र संस्थिता।
अधोगता गता या तु तस्यामीशः सदा वसेत्॥

बीजाक्षर—'ग'; जपसंख्या—१०००; जपस्थान—मणिपूर; होम—कल्हार कुसुम, मधु, पञ्च-मेवा और शर्करा से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोकपाठ-आहुति—३; पूजन-यन्त्र—
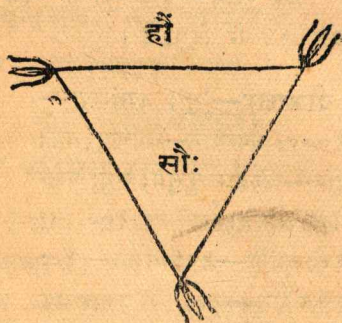
गतैर्माणिक्यत्वं गगनमणिभिः सान्द्रघटितं ।
किरीटं ते हैमं हिमगिरिसुते कीर्तयति यः ॥
स नीडेयच्छायाच्छुरणशबलं चन्द्रशकलं ।
धनुः शौनासीरं किमिति न निबध्नाति धिषणाम् ॥४२॥

भावार्थ—हे मा, हे हिमगिरिसुते! आप श्री के अनेक कोटि आदित्य माणिक्य मणियों से जटित काशमय शिर-मुकुट का जो व्यक्ति कीर्तन (ध्यान) करता है, उसे यह क्यों न दिखेगा कि वृद्धि पाते हुये चन्द्रमा के फैलते हुये प्रकाश के समान दिव्य मुकुट के मणि-प्रकाश से बना हुआ यह इन्द्र-धनुष है।

४१ वें श्लोक में श्री शङ्कर भगवत्पाद ने मनोनिरोधानन्द योगोपासना का वर्णन किया है। श्री कैवल्याश्रम और श्री मत्स्येन्द्र के मतानुसार श्री कीट मुकुटमणि मन्त्र यह है— "श्रीं ह्रीं श्रीं हिरण्यकिरीटाय, कोट्यादित्यतेजसे नमः।" अब उक्त ४२ वें श्लोक से श्री महा सुन्दरी मा के शिख-नख का वर्णन प्रारम्भ होता है।

४३ ध्यान—धु = ध् + उ—इन दोनों का ध्यान क्रमशः पृष्ठ ६ और १४ पर दिया है।

बीजाक्षर—'धु'; जपसंख्या—१०००; जपस्थान—मणिपूरचक्र; होम—कल्हार कुसुम, मधु, पञ्च-मेवा और शर्करा से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोकपाठ आहुति—३; पूजन-यन्त्र—
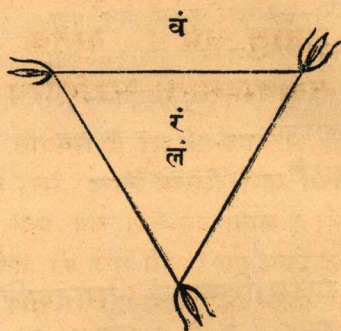
धुनोतु ध्वान्तं नस्तुलितदलितेन्दीवरवनं।
घनस्निग्धश्लक्ष्णं चिकुरनिकुरुम्बं तव शिवे॥
यदीयं सौरभ्यं सहजमुपलब्धुं सुमनसो।
वसन्त्यस्मिन्मन्ये बलमथनवाटीविटपिनाम्॥४३॥

भावार्थ—हे शिवे, हे जननि! आप श्री के काले, घने, चिकने और चमकते हुये बालों का जूड़ा, जो खिलते हुये नील-कमलवत् है, हमारे मन के महान्धकार को दूर करे। आपके परम सुन्दर केशों के इस जूड़े में बलमथन (इन्द्र) के नन्दनवन के कल्पवृक्ष कुसुमों की उत्तमोत्तम सुगन्धि भरी हुई है।

४४ ध्यान—व—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ७ पर दिया है।

बीजाक्षर—'व'; जपादि उपर्युक्त 'धु'—समान; पूजन-यन्त्र—पृष्ठ ६७ का जैसा त्रिकोण, उसके मध्य में 'श्रीं ह्रीं'।

वहन्ती सिन्दूरं प्रबलकबरीभारतिमिर-
द्विषां वृन्दैर्बन्दीकृतमिव नवीनार्ककिरणं ॥
तनोतु क्षेमं नस्तव वदनसौन्दर्यलहरी-
परीवाहस्रोतः सरणिरिव सीमन्तसरणिः ॥४४॥

भावार्थ—हे मां, हे भगवति ! आप श्री के दिव्य शिर की दिव्य माँग, जिसमें सिन्दूर भरा हुआ है, इस प्रकार शोभा दे रही है मानो घन केश रूप प्रबल अन्धकार में शत्रुवृन्द द्वारा कैद किए हुए किसी सूर्य की नवीन किरण अन्धकार को भेद कर बाहर फूट निकली हो। आप श्री की इस दिव्य माँग तथा परम दिव्य मुख की सुन्दर लहर हमारा शुभ कल्याण करने-वाली हो।

४५ ध्यान—अ—इसका ध्यान पृष्ठ ५ पर दिया है।

बीजाक्षर—'अ'; जपसंख्या—१०००; जपस्थान—मणिपूर चक्र; होम—कल्हार कुसुम, मधु, पञ्चमेवा और शर्करा से—१०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोक-पाठ—१०; श्लोकपाठ-आहुति—३; पूजन-यन्त्र—
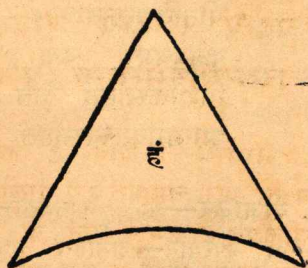
अरालैः स्वाभाव्यादलिकलभसश्रीभिरलकैः ।
परीतं ते वक्त्रं परिहसति पङ्केरुहरुचिम् ॥
दरस्मेरे यस्मिन्दशनरुचिकिञ्जल्करुचिरे ।
सुगन्धौ माद्यन्ति स्मरदहनचक्षुर्मधुलिहः ॥४५॥

भावार्थ—हे विश्वम्भरा मा ! आप श्री के घुंघराले बाल आप श्री के मुख पर बहु-मधुकर-दलवत् शोभा दे रहे हैं। आप श्री का अति सुन्दर वदन-पङ्कज मानों दूसरे सुन्दर कमलों के सौन्दर्य पर हास्य कर रहा है। आप श्री के किञ्चित् हास्ययुत सुगन्धिमय सुन्दर दन्तपंक्तिवाले श्री सरोज वदन पर भगवान् श्री स्मरहर के नेत्ररूप बाल मधुकर मस्त बने हैं। 'कलभ' का अर्थ हाथी का बच्चा होता है। यहाँ उसका अर्थ है नवीन मधुकर।

४६ ध्यान—ल—चतुर्भुजां पीतवस्त्रां रक्तपङ्कजलोचनां।
सर्वदा वरदां भीमां सर्वालङ्कारभूषितां॥
योगीन्द्रसेवितां नित्यां योगिनीं योगरूपिणीं।
चतुर्वर्गप्रदां देवीं नागहारोपशोभितां॥
एवं ध्यात्वा लकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
लकारं चञ्चलापाङ्गि कुण्डलीत्रयसंयुतं॥
पीतविद्युल्लताकारं सर्वरत्नप्रदायकं।
पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं सदा॥
त्रिशक्तिसहितं देवि त्रिबिन्दुसहितं परं।
आत्मादितत्त्वसहितं हृदि भावय पार्वति॥

बीजाक्षर—ल; जपसंख्या—१०००; जपस्थान—अनाहत चक्र; होम—मधुर-त्रय, दाड़िमी कुसुम-सिद्ध चरु से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोकपाठ-आहुति—४; पूजन-यन्त्र—
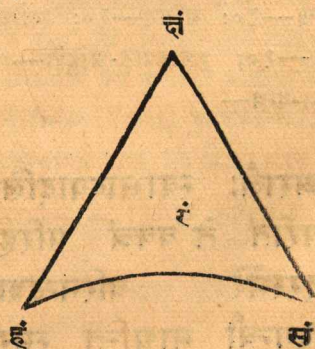
ललाटं लावण्यद्युतिविमलमाभाति तव यद्-
द्वितीयं तन्मन्ये मुकुटघटितं चन्द्रशकलं ॥
विपर्यासन्यासादुभयमपि सम्भूय च मिथः ।
सुधालेपस्यूतिः परिणमति राकाहिमकरः ॥४६॥

भावार्थ—हे मा ! आप श्री के ललाट को, जो विमल लावण्यमयी ज्योति से चमक रहा है, मैं आप श्री के दिव्य मुकुट का कलायुत दूसरा चन्द्रखण्ड मानता हूँ। ललाटस्थ चन्द्रार्द्ध और मुकुटस्थ चन्द्रार्द्ध दोनों के संयोग से (विश्व के महातमान्धकार में प्रशान्त प्रकाश देनेवाला) अमृतमय पूर्णचन्द्र बन जाता है।

४७ ध्यान—भ्रु=भ्+र्+उ—इन तीनों के ध्यान क्रमशः पृष्ठ ३३, ३७ और १४ पर दिये गये हैं।

बीजाक्षर—'भ्रु'; जपादि विधान उपर्युक्त समान। पूजन-यन्त्र—पृष्ठ ६८ के त्रिकोण जैसा, उसमें 'क्षं', 'हं', 'सं' और 'रं' के स्थान पर क्रमशः 'क्षं', 'रं', 'रं' और 'ह्रौं' लिखकर 'रं', 'रं' के बीच में 'क्षं' लिखे।

भ्रुवौ भुग्ने किञ्चिद्भुवनभयभङ्गव्यसनिनि ।
त्वदीये नेत्राभ्यां मधुकररुचिभ्यां धृतगुणं ॥
धनुर्मन्ये सव्येतरकरगृहीतं रतिपतेः ।
प्रकोष्ठे मुष्टौ च स्थगयति निगूढान्तरमुमे ॥४७॥

भावार्थ—हे त्रिभुवन के मद को दूर करनेवाली मा, हे त्रिभुवनभयापहे ! आप श्री की वक्र भृकुटि में रतिपति के धनुष का दर्शन होता है, जिसमें आप श्री के नेत्र-मधुकर गुण

(ज्या) रूप हैं। उस धनुष को श्री मदन महाराज ने अपनी वाम कर-मुष्टि में मध्य भाग से पकड़ा है। धनुष का मध्य भाग कर-मुष्टि में होने से उस भाग की श्यामता दृष्टि-गोचर नहीं होती (एक भृकुटि धनुषार्द्ध भाग, दूसरी भृकुटि धनुषार्द्ध--इन दोनों के बीच में नासिका के ऊपर का खाली भाग=करमुष्टि)। स्वभक्तों के चित्त से भय दूर करने के विचार से किञ्चिद्विचार-मुद्रा-कालीन भ्रू-दर्शन का यह वर्णन है।

४८ ध्यान--'अ'--इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ५ पर दिया है।

बीजाक्षर—'अ'; जपादि विधान उपर्युक्त समान; पूजन-यन्त्र—पृष्ठ ६८ पर दिये त्रिकोण के समान, उसमें 'ह्रं', 'हं', 'सं' और 'रं' के स्थान पर क्रमशः 'वं', 'सं', 'शं' और 'क्ष' लिखे।

अहः सूते सव्यं तव नयनमर्कात्मकतया।
त्रियामां वामं ते सृजति रजनीनायकतया॥
तृतीया ते दृष्टिर्दरदलितहेमाम्बुजरुचिः।
समाधत्ते सन्ध्यां दिवसनिशयोरन्तरचरीं॥४८॥

भावार्थ—हे भगवति! आप श्री का दक्षिण नेत्र अर्कात्मक होने से दिन का कारण होता है और वामनेत्र चन्द्रात्मक होने से रात्रि का कारण बनता है। हे मा, आप श्री का तृतीय नेत्र, जो कुछ खिले हुये सुवर्ण पद्म के समान है, सन्ध्या और उषा की मनोहारिणी आभा को उत्पन्न करता है, जो दिन तथा रात्रि का सन्धिकाल है।

इस श्लोक में श्री भगवती महामाया की काल-सञ्चालिनी शक्ति का वर्णन है।

४६ ध्यान—वि=व्+इ—इन दोनों का ध्यान क्रमशः पृष्ठ ७ और २ पर दिया है।

बीजाक्षर--'वि'; जपादि विधान उपर्युक्त समान; पूजन-यन्त्र—पृष्ठ ६७ पर दिये त्रिकोण के समान, उसमें 'हं', 'सः' के स्थान पर क्रमशः 'ह्रीं', 'श्रीं' लिखे।

विशाला कल्याणी स्फुटरुचिरयोध्या कुवलयैः।
कृपाधाराऽऽधारा किमपि मधुराभोगवतिका॥
अवन्ती दृष्टिस्ते बहुनगरविस्तारविजया।
ध्रुवं तत्तन्नामव्यवहरणयोग्या विजयते॥४९॥

भावार्थ—हे विश्वव्यापिनि मा! आप श्री के दिव्य नेत्रों की दिव्य दृष्टि-विशाला-विश्वव्यापिनी है; विश्व में कल्याणी-कल्याण का वितरण करनेवाली है; अत्यन्त चञ्चल तथा चमकीली है, अतः नीलकमल से—अयोध्या--अजित है; कृपास्रोत की धारा है तथा अत्यन्त मधुर है; अत्यन्त भोगवती—आनन्दमयी (अनन्तानन्दमयी) है; जनरक्षिणी (अवन्ती) है एवं बहु-नगरों के विस्तार को विजय करनेवाली है तथा उन-उन नगरों की नामोपमा के योग्य है (इससे भी अतिपर है)। हे मा, तेरी उस दयामयी दृष्टि की सदा जय हो, जय हो।

इस श्लोक में श्री महामाया की अष्टप्रकार की दिव्य दृष्टि का दिव्य भाव कहा है। उनमें आठ प्राचीन महानगरियों के नाम हैं। इन नामों के भावार्थ में दृष्टिशक्ति की क्रियायें बताई हैं। यथा—

१ विशाला—अन्तर्दृष्टि शक्ति, २ कल्याणी—ऐश्वर्यमयी तथा आश्चर्यमयी दृष्टि, ३ अयोध्या—फैली हुई पुतलियों से देखना, ४ धारा—आलस्यमयी दृष्टि, ५ मधुरा—स्तोक शान्ति-

मयी दृष्टि, ६ भोगवती—मित्रभाववाली मैत्री-प्रदर्शिका दृष्टि, ७ अवन्ती—अक्षोभवती प्रशान्त दृष्टि, ८ विजया—प्रसन्ना गतिमयी दृष्टि ।

५० ध्यान—'क'—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ११ पर दिया है ।

बीजाक्षर—'क', जपसंख्या—१०००; जपस्थान—अनाहतचक्र—हृच्चक्र; होम—मधुर-त्रय, दाड़िमी-कुसुम-सिद्ध चरु से—१०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोक-पाठ—१०; श्लोकपाठ-आहुति—४; पूजन-यन्त्र-

कवीनां सन्दर्भस्तबकमकरन्दैकरसिकं ।
कटाक्षव्याक्षेपभ्रमरकलभौ कर्णयुगलं ॥
अमुञ्चन्तौ दृष्ट्वा तव नवरसास्वादतरला—
वसूयासंसर्गादलिकनयनं किञ्चिदरुणं ॥५०॥
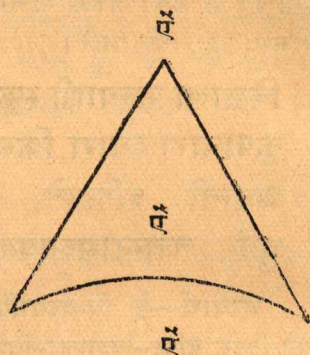
भावार्थ—हे मा ! महाकवि लोग तेरा यशगान अत्यन्त मधुर नवरसमयी रचनाओं से करते हैं । नवीन भ्रमरवत् कटाक्ष करनेवाले आप श्री के दक्षिण-वाम दो नेत्र कर्ण के समीप होने से उन कवियों के नवरसमय मधुर काव्यरस का स्वाद लिया करते हैं । परन्तु तृतीय नेत्र कपाल पर होने से कर्ण से दूर है । अतः ईर्षा से वह कुछ लाल-सा दीखता है ।

५१ ध्यान—'शि'—इसका ध्यानादि पृष्ठ १-२ पर दिया है ।

बीजाक्षर—'शि'; जपादि विधान उपर्युक्त पृष्ठ ७२ के समान। पूजन-यन्त्र—पृष्ठ ७२ पर दिये त्रिकोण के समान, उसमें 'ऐं', 'ऐं', 'ऐं' के स्थान पर क्रमशः 'हा', 'परा' और 'स्वा' लिखे।

शिवे श्रृङ्गारार्द्रा तदितरजने कुत्सनपरा।
सरोषा गङ्गायां गिरिशचरिते विस्मयवती॥
हराहिभ्यो भीता सरसिरुहसौभाग्यजयिनी।
सखीषु स्मेरा ते मयि जननि दृष्टिः सकरुणा॥५१॥

भावार्थ—हे दयामयी मा! आप श्री की रसमयी लीलामयी दृष्टि भगवान् शिव के प्रति प्रेम तथा श्रृङ्गार से आर्द्र है; इतर जनों के प्रति घृणा से भरी हुई है; श्री गङ्गा जी के प्रति रोषपूर्ण है; भगवान् श्री गिरीश शम्भु के अद्भुत चरित्रों से विस्मयवती; शिवाभरण नागों को देखकर भयवती; कमल के सुन्दर रम्यवर्ण में जयवती तथा स्वसखियों की ओर हास्यवती है। हे मा, इस दास के प्रति तेरी दृष्टि सदैव दयामयी है।

इस श्लोक में श्री महा दयामयी भगवती की नवरसमयी दृष्टि का वर्णन है। यथा--

१ श्रृंगार—भगवान् शिव के प्रति, २ वीभत्स—इतरजन, ३ रौद्र—श्री गङ्गा, ४ अद्भुत—शिवचरित्र, ५ भयानक—शिवालङ्कार (नागादि), ६ वीर—कमलवर्ण, ७ हास्य—सखीजन, ८ करुणा—दास (भक्त) प्रति, ९ शान्त—संसार के प्रति (सदैव शान्त दृष्टि)।

५२ ध्यान—ग—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ६४ पर दिया है।

बीजाक्षर—'ग'; जपादि विधान उपर्युक्त समान; पूजन यन्त्र—पृष्ठ ७२ जैसा, त्रिकोण उसके मध्य में 'द्फ्रें'।

गते कर्णाभ्यर्णं गरुत इव पक्ष्माणि दधती।
पुरां भेत्तुश्चित्तप्रशमरसविद्रावणफले॥
इमे नेत्रे गोत्राधरपतिकुलोत्तंसकलिके।
तवाकर्णाकृष्टस्मरशरविलासं कलयतः॥५२॥

भावार्थ—हे श्री गिरिराजकुलजा सुन्दरकली, हे मा! आप श्री के आकर्ण खिंचे हुये ये दोनों नेत्र, जो पक्षीपक्षालंकृत (मदनबाण) कटाक्ष से युक्त हैं तथा जो भगवान् श्री त्रिपुरारि के प्रशान्त मन के मन्थन करने में समर्थ हैं—मदन-विद्रावण बाण का काम करते हैं।

५३ ध्यान—वि=व्+इ—इन दोनों का ध्यान क्रमशः पृष्ठ ७ और २ पर दिया है।

बीजाक्षर--'वि'; जपादि विधान उपर्युक्त समान। पूजन-यन्त्र—पृष्ठ ७२ की तरह त्रिकोण, उसके मध्य में 'ह्स्रौं'।

विभक्तत्रैवर्ण्यं व्यतिकरितलीलाञ्जनतया।
विभाति त्वन्नेत्रत्रितयमिदमीशानदयिते॥
पुनः स्रष्टुं देवान्द्रुहिणहरिरुद्रानुपरता-
न्रजः सत्वं बिभ्रत्तम इति गुणानां त्रयमिव॥५३॥

भावार्थ- हे ईशानदयिते ईशानेश्वरि भगवति मा! आप श्री के दिव्य नेत्रों का नेत्राञ्जन-सहित त्रैवर्ण्य प्रलयान्त में लयत्व को प्राप्त हुये ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र को पुनरुत्पन्न करनेवाले त्रिगुणवत् भासित होता है।

नेत्र के तीन वर्ण—किसी कवि ने नेत्र की उपमा वर्णन करते हुए कहा है—

अमी हलाहल मद भरे श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुक-झुक परत जेहि चितवत इक बार॥

श्री नेत्रों के तीन रङ्ग हैं—श्वेत, श्याम और रक्त अर्थात् इन नेत्रों में अमृत, विष तथा मद तीनों एक साथ भरे हुये हैं। अमृत का रङ्ग श्वेत है, विष का श्याम तथा मद का लाल। इन तीनों के गुण भी विभिन्न हैं। अमृत से व्यक्ति जीता है, विष से मरता है और मद से नशे में झोंके खाता है। जिसकी ओर इन नेत्रों की दृष्टि एक बार भी पड़ जाती है, उस व्यक्ति में ये तीनों गुणविकार उत्पन्न हो जाते हैं। वह जीता भी है, मरता भी है और उन्मत्तवत् झुक-झुक भी पड़ता है।

आप श्री के ये नेत्रत्रय त्रिगुण-निर्मित त्रिशूलवत् भासते हैं।

५४ ध्यान—१—विचित्रवसनां देवीं द्विभुजां पङ्कजेक्षणाम्।
रक्तचन्दनलिप्ताङ्गीं पद्ममालाविभूषिताम्॥
मणिरत्नादिकेयूरहारकेयूरविग्रहां।
चतुर्वर्गप्रदां नित्यां नित्यानन्दमयीं परां।
एवं ध्यात्वा पकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
अतःपरं प्रवक्ष्यामि पकाराक्षरमव्ययं।
चतुर्वर्गप्रदं वर्णं त्रिशक्तिसहितं प्रिये॥
पञ्चदेवमयं वर्णं शरच्चन्द्रमयप्रभम्॥
पञ्चप्राणमयं वर्णं स्वयं परमकुण्डली॥
त्रिगुणीसहितं वर्णं आत्मादितत्त्वसंयुतं।
महामोक्षप्रदं देवि हृदि भावय पार्वति॥

बीजाक्षर—'प'; जपादि विधान उपर्युक्त-समान; पूजन-यन्त्र—पृष्ठ ७२ जैसा त्रिकोण, उसमें मध्य में कुछ न लिखकर ऊपर और नीचे 'ऐं' के स्थान पर 'क्लीं' लिखे।

पवित्रीकर्तुं नः पशुपतिपराधीनहृदये ।
दयामित्रैर्नेत्रैररुणधवलश्यामरुचिभिः ॥
नदः शोणो गङ्गा तपनतनयेति ध्रुवममुम् ।
त्रयाणां तीर्थानामुपनयसि सम्भेदमनघं ॥५४॥

भावार्थ—हे मा, हे अपर्णे, हे पशुपति-पराधीन-हृदये ! अरुण, धवल और श्याम रंगवाले आप श्री के तीनों नेत्र शोण, गङ्गा तथा यमुना के पापनाशक त्रितीर्थवत् हैं। आप श्री हमें पवित्र करने की इच्छा से अपने दयामय तीन नेत्रों के साथ इन तीनों अघहर तीर्थों को ले आई हैं।

५५ ध्यान—'नि' = 'न्' + 'इ'—इन दोनों का ध्यान क्रमशः पृष्ठ २३ और २ पर दिया है।

बीजाक्षर—'नि'; जपादि विधान उपर्युक्त समान। पूजन-यन्त्र—पृष्ठ ७२ जैसा त्रिकोण, उसके मध्य में 'ह्रीं'।

निमेषोन्मेषाभ्यां प्रलयमुदयं याति जगती ।
तवेत्याहुः सन्तो धरणिधरराजन्यतनये ॥
त्वदुन्मेषाज्जातं जगदिदमशेषं प्रलयतः ।
परित्रातुं शङ्के परिहृतनिमेषास्तव दृशः ॥५५॥

भावार्थ—हे धरणिधर-विश्वधर-कन्ये, हे मा ! आप श्री के निमेषोन्मेष (पलक खोलने, बन्द करने) में विश्व का प्रलय तथा उत्पत्ति (पुनरुत्पत्ति) होती है, ऐसा अनुभवी महापुरुषों का कहना है (पलक खोलने से विश्वोत्पत्ति तथा बन्द करने से प्रलय)। मेरा मानना तो यह है कि आप श्री ने विश्व-संरक्षण के विचार से नेत्रों में पलक मारना ही छोड़ दिया है।

इस श्लोक में श्री मा की सतत जागृत स्थिति का भाव है।

५६ ध्यान—त—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ४ पर दिया है।

बीजाक्षर—'त'; जपादि विधान उपर्युक्त समान। पूजन-यन्त्र—पृष्ठ ७२ जैसा त्रिकोण, उसके मध्य में 'श्रीं'।

तवापर्णे कर्णे जपनयनपैशुन्यचकिताः।
निलीयन्ते तोये नियतमनिमेषाः शफरिकाः॥
इयं च श्रीर्बद्धच्छदपुटकवाटं कुवलयं।
जहाति प्रत्यूषे निशि च विघटय्य प्रविशति ॥५६॥

भावार्थ—हे मा, हे अपर्णे! आप श्री के कर्ण पर्यन्त फैले हुये दिव्य नेत्रों के भय से (कि कहीं ये कान में खबर न दे दें) मछलियाँ अनिमेष नेत्र से पानी के नीचे जा छिपी हैं। सौन्दर्य-श्री दिन में नील कमलिनी को छोड़ जाती है, जब कि उसके दल-द्वार बन्द होते हैं और रात्रि-समय उनके दल-द्वार खुलने पर वह उनमें पुनः प्रवेश करती है। यहाँ श्री-स्तवनकार ने श्री नेत्रों से मछली तथा कमलिनी को सन्तुलित किया है। मछली का जल में अनिमेष नयन से छिप रहने के कारण श्री मा के नेत्रों का भय कहा है। उसी प्रकार कमलिनी श्री—नेत्र-भय से रात्रि को खिलती है जब श्री भगवती के नेत्र निद्रा में बन्द हो जाते हैं तथा दिन को मा श्री की आँख खुलते ही कमलिनी की श्री भय से उठ जाती है तथः उसके पत्र बन्द हो जाते हैं।

५७ ध्यान—द = द् + ऋ

द्—चतुर्भुजां पीतवस्त्रां नवयौवनसंस्थितां।
अनेकरत्नघटितहारनूपुरशोभितां॥

एवं ध्यात्वा दकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ।
त्रिशक्तिसहितं देवि त्रिबिन्दुसहितं प्रिये ॥
आत्मादितत्त्वसंयुक्तं दकारं प्रणमाम्यहं ।
दकारं शृणु चार्वङ्गि चतुर्वर्गप्रदायकं ॥
पञ्चदेवात्मकं वर्णं पञ्चप्राणमयं सदा ॥

ऋ—षड्भुजां नीलवर्णां च नीलाम्बरधरां परां ।
नानालङ्कारभूषाढ्यां सर्वालंकृतमस्तकां ॥
भक्तिप्रदां भगवतीं भोगमोक्षप्रदायिनीं ।
एवं ध्यात्वा सुरश्रेष्ठां तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ।
पञ्चप्राणमयं वर्णं चतुर्ज्ञानमयं तथा ।
रक्तविद्युल्लताकारं ऋकारं प्रणमाम्यहं ॥
ऋकारः परमेशानि कुण्डलीमूर्तिमान् स्वयं ।
अत्र ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्चैव वरानने ॥
सदाशिवयुतं वर्णं सदा ईश्वरसंयुतं ।
ऊर्ध्वा दक्षगता वक्रा त्रिकोणा वामतस्ततः ॥
पुनस्त्वधो दक्षगता मात्रा शक्तिः परास्मृता ।
मात्रा तु ब्रह्मविष्णवीशाः तिष्ठन्ति क्रमतो परा ॥

बीजाक्षर—'ह'; जप-संख्या—१०००; जप-स्थान—अनाहत; होम—मधुर-त्रय, दाड़िमी-कुसुम-सिद्ध चरु से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोक-पाठ—१०; श्लोकपाठ आहुति–४; पूजन-यन्त्र—
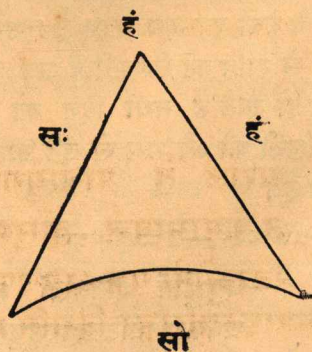
दृशा द्राघीयस्या दरदलितनीलोत्पलरुचा ।
दवीयांसं दीनं स्नपय कृपया मामपि शिवे ॥
अनेनायं धन्यो भवति न च ते हानिरियता ।
वने वा हर्म्ये वा समकरनिपातो हिमकरः ॥५७॥

भावार्थ—हे शिवे, हे मा ! आप श्री की अति दूरदर्शिनी दिव्य दृष्टि से, जो खिलती हुई नील कमलिनीवत् अत्यन्त मनोहर है, अति दीन और दूर पड़े हुये इस सेवक दास को भी स्नान कराओ । इससे यह दास तो कृतकृत्य हो जायगा और आप श्री की उसमें तनिक भी हानि न होगी । हे मा, चन्द्र की अमृतमयी शीत किरणें वन में तथा महल में समरूप से पड़ती हैं ।

५८ ध्यान—'अ'—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ५ पर दिया है ।

बीजाक्षर—'अ'; जपसंख्या—१०००; जपस्थान—अनाहत चक्र; होम—मधुर-त्रय, दाड़िमी-कुसुम सिद्ध चरु से—१०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोकपाठ-आहुति—४; पूजन-यन्त्र—
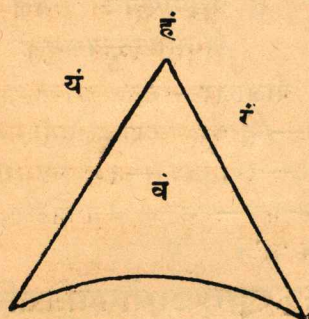
अरालं ते पालीयुगमलगराजन्यतनये ।
न केषामाधत्ते कुसुमशरकोदण्डकुतुकं ।
तिरश्चीनो यत्र श्रवणपथमुल्लङ्घ्य विलस-
न्नपाङ्गव्यासङ्गो दिशति शरसन्धानधिषणाम् ॥५८॥

भावार्थ—हे राजतनये, हे सर्वव्यापिनि मा! आप श्री के कर्ण तथा नेत्र के बीच की झुकी हुई दोनों पाली किस व्यक्ति को पुष्पधन्वा के धनुष के भ्रम में न डाल देगी? क्योंकि आप श्री के नेत्र, जो कानपर्यन्त लम्बे हैं, ज्या पर चढ़े हुये बाण का स्मरण कराते हैं।

५६ ध्यान—'स्फु' = स् + फ् + उ—'स' और 'उ' का ध्यान क्रमशः पृष्ठ १३ और १४ में दिया है।

'फ'— प्रलयाम्बुदवर्णाभां ललज्जिह्वां चतुर्भुजां।
भक्ताभयप्रदां नित्यां नानालङ्कारभूषितां॥
एवं ध्यात्वा फकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
फकारं शृणु चार्वङ्गि रक्तविद्युल्लतासमम्॥
चतुर्वर्गप्रदं देवि पञ्चदेवमयं तथा॥
पञ्चप्राणमयं वर्णं सदा त्रिगुणसंयुतं।
आत्मादितत्त्वसंयुक्तं त्रिबिन्दुसहितं प्रिये॥

बीजाक्षर—'स्फु'; जप-संख्या—१०००; जप-स्थान—अनाहत; होम—मधुरत्रय, दाड़िमी-कुसुम-सिद्ध चरु से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोकपाठ आहुति—४; पूजन-यन्त्र—पृष्ठ ७६ जैसा त्रिकोण, उसके अगल-बगल 'शं', 'सं' और नीचे 'त्वं'।

स्फुरद्गण्डाभोगप्रतिफलितताटङ्कयुगलं ।
चतुश्चक्रं मन्ये तव मुखमिदं मन्मथरथं ॥
यमारुह्य द्रुह्यत्यवनिरथमर्केन्दुचरणम् ।
महावीरो मारः प्रमथपतये सज्जितवते ॥५९॥

भावार्थ—हे विश्वोद्धारिणी मा! आप श्री का यह श्री मुख, जिसमें कान में पहने हुये ताटङ्काभरण की दिव्य मणियों का

काश दिव्य कपोलों पर पड़ रहा है, महावीर श्री मन्मथराज का चार पहियेवाला रथ है, जिस पर बैठकर वह अद्वितीय योद्धा सूर्य-चन्द्र-रूप चक्रवाले पृथ्वी-रथ पर बैठे हुये श्री भगवान् प्रमथनाथ के सम्मुख युद्धार्थ तत्पर हुआ।

इस श्लोक में मा श्री के वदन को कामरथ की उपमा दी है, जिसमें श्री मुख को रथ, कर्ण में पहिने हुये दो ताटङ्कों और दोनों कपोलों पर पड़ती हुई उनकी दो छायाओं को चार चक्र (रथ के चार पहिये) कहा है। अर्थात् श्री मा के दिव्य सौंदर्य का आश्रय लेकर श्री मदन भगवान् त्रिपुर-हर महाप्रभु के समक्ष युद्ध करने को प्रस्तुत हुये हैं।

६० ध्यान—'स'—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ १३ पर दिया है।

बीजाक्षर—'स'; जपसंख्या—१०००; जप-स्थान—अनाहतचक्र; होम—मधुर-त्रय, दाड़िमी-कुसुम-सिद्ध चरु से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोक-पाठ-संख्या—१०; श्लोकपाठ आहुति—४; पूजन-यन्त्र—
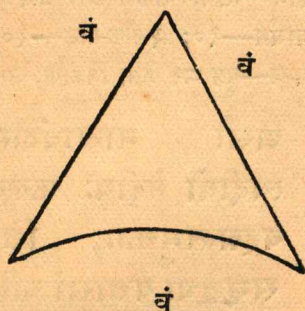
सरस्वत्याः सूक्तीरमृतलहरीकौशलहरीः।
पिबन्त्याः शर्वाणि श्रवणचुलुकाभ्यामविरलं॥
चमत्कारश्लाघाचलितशिरसः कुण्डलगणो।
झणत्कारैस्तारैः प्रतिवचनमाचष्ट इव ते ॥६०॥

भावार्थ—हे शिवे, हे मा! जिस समय आप श्री अपने कर्ण-विवर से श्री सरस्वती-निर्मित और उनके द्वारा मधुर स्वर

से गाये हुये आप श्री के स्तवन-वाचक मधुर सुधामय काव्य-गान का पान करती हैं, उस समय आप श्री के कर्ण-ताटङ्क की घण्टियाँ उस गान के प्रशंसा-भाव में आप श्री के धीरे-धीरे हिलते हुये शिर के साथ हिलती हुई अत्यन्त मधुर स्वर-मय आनन्द नाद को उत्पन्न करती हैं।

इस श्लोक में भगवती सरस्वती मा के सुकाव्य तथा सुगायन की प्रशंसा तथा मा श्री के कर्ण ताटङ्क की दिव्य स्वर-मयी घण्टियों का वर्णन है।

६१ ध्यान—'अ'—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ५ पर दिया है।

बीजाक्षर—'अ'; जपसंख्या—१०००; जप-स्थान—विशुद्धिचक्र; होम—तिल, शर्करा और जपा कुसुम से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोक-पाठ—१०; श्लोक-पाठ आहुति—५; पूजन-यन्त्र—पृष्ठ ८१ जैसा त्रिकोण, उसके मध्य में 'ह्रीं'।

असौ नासावंशस्तुहिनगिरिवंशध्वजपटि।
त्वदीयो नेदीयः फलतु फलमस्माकमुचितं॥
वहन्नन्तर्मुक्ताः शिशिरतरनिश्वासघटिताः।
समृद्ध्या यत्तासां बहिरपि च मुक्तामणिधरः॥६१॥

भावार्थ—हे गिरिवंशध्वजपटि, हे मा! यह आप श्री की नासिका का वंश (बांस) हम साधकों को त्वरित उचित फल देनेवाला हो। आप श्री के प्रशान्त ठण्डे निःश्वास से नासिका के छिद्रान्तर भाग में मोती बने हैं तथा नासिका के बहिर्भाग में भी आप श्री ने मोती धारण किया है।

इस श्लोक में श्री मा की नासिका की वंश से उपमा दी है। वंश में छिद्र होता है। पुराने लेखकों का मानना था कि बाँस

में से मोती उत्पन्न होता है। 'फलतु फलमस्माकमुचितं' में 'फल' शब्द से शायद लेखक का भाव हो 'वंश से उत्पन्न हुआ मोती' परन्तु विचार-सिद्ध बात तो यह है कि 'फल' शब्द से कवि का भाव कैवल्य अथवा मोक्ष से है। आप श्री की श्री नासिका अनन्त मोतियों से शृङ्गारित है।

६२ ध्यान—'प्र' = प + र—इन दोनों का ध्यान क्रमशः पृष्ठ ७५ और ३७ पर दिया है।

बीजाक्षर—'प्र'; जपसंख्या—१०००; जपस्थान—विशुद्धिचक्र; होम—तिल, शर्करा और जवा-कुसुम से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोकपाठ आहुति—५; पूजन-यन्त्र—
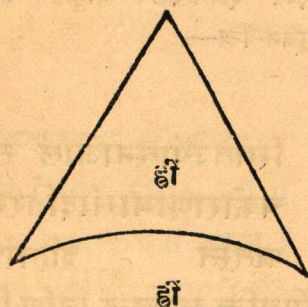
प्रकृत्याऽऽरक्तायास्तव सुदति दन्तच्छदरुचेः।
प्रवक्ष्ये सादृश्यं जनयतु फलं विद्रुमलता॥
न बिम्बं त्वद्बिम्बप्रतिफलनरागादरुणितं।
तुलामध्यारोढुं कथमिव न लज्जेत कलया॥६२॥

भावार्थ—हे मा, सुन्दर दन्तपंक्तिवाली हे त्रिपुरसुन्दरि! मैं आप श्री के स्वाभाविक रक्तोष्ठ की उपमा में उन्हे विद्रुम-लता सम कहता हूँ, बिम्बाफलवत् नहीं। बिम्बाफल में तो आप श्री के आरक्त रूप की रक्त छाया है। अतः आप श्री के अनुपम रूप की तनिक भी तुलना उन्हें लज्जित करने में अलं है।

६३ ध्यान—स्मि = स् + म् + इ—इन तीनों का ध्यान क्रमशः पृष्ठ १३, १६ और २ पर दिया है।

बीजाक्षर—'स्मि'; जपसंख्या—१०००; जपस्थान—विशुद्धिचक्र; होम—तिल, शर्करा और जपा-कुसुम से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोकपाठ आहुति—५; पूजन-यन्त्र—
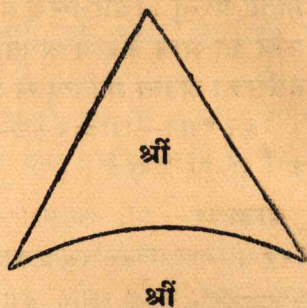
स्मितज्योत्स्नाजालं तव वदनचन्द्रस्य पिबतां।
चकोराणामासीदतिरसतया चञ्चुजडिमा॥
अतस्ते शीतांशोरमृतलहरीमम्लरुचयः।
पिबन्ति स्वच्छन्दं निशि निशि भृशं काञ्जिकधिया॥६३॥

भावार्थ—हे मा! आप श्री के चन्द्रमुख के स्मितज्योत्स्ना जाल का पान कर अत्यधिक मिठास के कारण सुखेच्छु चकोरों की चंचु जड़ हो गयी है। इससे उन्हें अम्ल चन्द्रामृत कांजी-वत् प्रति रात्रि को पीना पड़ता है। आप श्री की अनन्त सुख-मयी दया सुधा का अमोघ प्रवाह नित्य बहने पर भी विश्व के जीव दुःखी रहते हैं। इसका कारण यही है कि वे श्री प्रकृति महामाया के स्मित ज्योत्स्ना जाल में अत्यन्त सुख-प्राप्ति-कामना के कारण फँस जाते हैं तथा सुख-प्राप्ति-कामना के प्रतिक्रिया-रूप में उन्हें दुःख भोगना पड़ता है। इसकी औषधि है अम्ल स्वादवाली तपस्या—'सुखे दुःखे समे कृत्वा...' आदि।

६४ ध्यान—'अ'—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ५ पर दिया है।

बीजाक्षर—'अ'; जपसंख्या—१०००; जपस्थान—विशुद्धिचक्र; होम—तिल, शर्करा और जपा-कुसुम से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोकपाठ आहुति—५; पूजन-यन्त्र
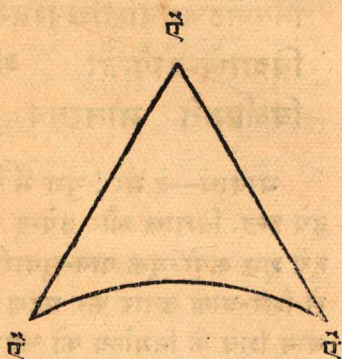
अविश्रान्तं पत्युर्गुणगणकथाऽऽम्रेडनजपा।
जपापुष्पच्छाया तव जननि जिह्वा जयति सा॥
यदग्रासीनायाः स्फटिकदृषदच्छच्छविमयी।
सरस्वत्या मूर्तिः परिणमति माणिक्यवपुषा॥६४॥

भावार्थ—हे विश्वाम्बा! आप श्री की उस जिह्वा की जय हो, जो जपापुष्प के रंग की है और जिससे आप श्री अपने स्वामी का दिन रात सतत कीर्तन और जप करती हो, तथा जिस जिह्वा के अग्रभाग में आसीन शुद्ध स्फटिकवर्ण श्री सरस्वती माणिक्य-सदृश रक्तवर्ण हो जाती हैं जैसे स्फटिक के नीचे लालवर्ण होने से स्फटिक भी लाल रंग का दीखता है।

६५ ध्यान—'र'—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ३७ पर दिया है।

बीजाक्षर—'र'; जपादि विधान उपर्युक्त समान। पूजन-यन्त्र—ऊपर जैसा त्रिकोण, उसके मध्य में 'श्रीं'।

रणे जित्वा दैत्यानपहृतशिरस्त्रैः कवचिभि—
र्निवृत्तैश्चण्डांशत्रिपुरहरनिर्माल्यविमुखैः ॥
विशाखेन्द्रोपेन्द्रैः शशिविशदकर्पूरशकला ।
विलीयन्ते मातस्तव वदनताम्बूलकबलाः ॥६५॥

भावार्थ—हे मा ! युद्ध में दैत्यों को जीत कर कवच पहने हुये इन्द्र, विशाख और उपेन्द्र आपके श्रीमुख से चबाकर थूके हुये शुभ्र कर्पूर-युक्त पान-सुपारी का प्रसाद अत्यन्त उत्सुकता से शिर-त्राण उतार कर ग्रहण करते हैं तथा श्रीत्रिपुरहर भगवान् शिव के निर्माल्य को चण्डांश मानकर छोड़ देते हैं।

विशाख—स्कन्द, उपेन्द्र—विष्णु, चण्ड—शिवगण ! चण्ड की शिवगण-भाव से उपासना शिव-मन्दिरों में होती है। ये शिवनिर्माल्याधिकारी शिवगण हैं। सेनापति श्री स्कन्ददेव और उनके मुख्य सैनिकों के युद्धभूमि से लौटने पर श्री भगवती मा के मुख-कमल से थूके हुये पान प्रसाद ग्रहण करने का इस श्लोक में वर्णन है। यह प्रसाद-माहात्म्य है।

६६ ध्यान—वि=व्+इ—इन दोनों का ध्यान क्रमशः पृष्ठ ७ और २ पर दिया है।

बीजाक्षर—'वि'; जपादि उपर्युक्त समान; पूजन-यन्त्र—पृष्ठ ८५ का जैसा त्रिकोण, उसके मध्य में 'ह्लीं'।

विपंच्या गायन्ती विविधमपदानं पुररिपो—
स्त्वयाऽऽरब्धे वक्तुं चलितशिरसा साधुवचने ॥
तदीयैर्माधुर्यैरपलपिततन्त्रीकलरवां ।
निजां वीणां वाणी निचुलयति चोलेन निभृतम् ॥६६॥

भावार्थ—हे मा ! भगवती श्री सरस्वती श्रीभगवान् शिव के विचित्र लीला-चरित्र का वीणा में गान कर अपनी वीणा को उसके झोले में शीघ्र ही बन्द कर देती हैं क्योंकि उनके (श्री सरस्वती के) गान-माधुर्य की प्रशंसा में आप श्री जो अत्यन्त मधुर स्वर से कुछ धीरे-धीरे सिर हिलाते हुये बोलती हैं, उस स्वर के माधुर्य में श्री सरस्वती जी की वीणा का तारस्वर फीका पड़ जाता है।

६७ ध्यान—'क'—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ११ पर दिया है।

बीजाक्षर—'क', जपसंख्या—१०००; जपस्थान—विशुद्धिचक्र; होम—तिल, शर्करा और जपाकुसुम से—१०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोकपाठ-आहुति—५; पूजन-यन्त्र--
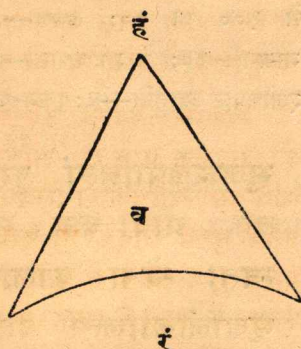
कराग्रेण स्पृष्टं तुहिनगिरिणा वत्सलतया।
गिरीशेनोदस्तं मुहुरधरपानाकुलतया॥
करग्राह्यं शम्भोर्मुखमुकुरवृन्तं गिरिसुते।
कथं कारं ब्रूमस्तव चिबुकमौपम्यरहितं ॥६७॥

भावार्थ—हे मा, हे हिमसुते ! आप श्री के पिता श्री ने वात्सल्य भाव से आप श्री के चिबुक का अपने कराग्र से स्पर्श किया ! फिर अधर-पानातुर श्री भगवान् देवदेवेश शिव ने बारम्बार चुम्बार्थ उस चिबुक को उठाया। आप श्री के मुख-

मुकुर (आरसी) का वृन्त (नीचे की रेखा, श्री चिबुक) श्री भगवान् शिव के ही हस्त-विलास की वस्तु है। उस उपमा-रहित दिव्य चिबुक का वर्णन हम किस प्रकार और किन शब्दों में करें ?

६८ ध्यान—भु = भ् + उ—इन दोनों का ध्यान क्रमशः पृष्ठ ३३ और १४ पर दिया है।

बीजाक्षर—'भु'; जपसंख्या—१०००; जपस्थान—विशुद्धिचक्र; होम—तिल, शर्करा और जपाकुसुम से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोकपाठ आहुति—५; पूजन-यन्त्र—

भुजाश्लेषान्नित्यं पुरदमयितुः कण्टकवती।
तव ग्रीवा धत्ते मुखकमलनालश्रियमियं॥
स्वतः श्वेता कालागुरुबहुलजम्बालमलिना।
मृणालीलालित्यं वहति यदधो हारलतिका॥६८॥

भावार्थ—हे मा ! भगवान् श्री त्रिपुरारि के नित्य आलिङ्गन से कण्टकवती आप श्री की ग्रीवा आपके श्री कमल मुख को नालवत् शोभा दे रही है। ग्रीवा में लटकती हुई मोती की माला तथा ग्रीवा स्वयं श्वेत है परन्तु कालागरु के लेप से ग्रीवा में श्यामलता झलकती है। अतः उसमें कमल-नाल का लालित्य दिख रहा है।

६९ ध्यान—'ग'—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ६४ पर दिया है।

बीजाक्षर—'ग'; जपादि विधान उपर्युक्त समान। पूजन-यन्त्र—श्लोक ६८ की तरह।

गले रेखास्तिस्रो गतिगमकगीतैकनिपुणे।
विवाहव्यानद्धप्रगुणगुणसंख्याप्रतिभुवः॥
विराजन्ते नानाविधमधुररागाकरभुवां॥
त्रयाणां ग्रामाणां स्थितिनियमसीमान इव ते॥६९॥

भावार्थ—गति-गमक-गीतैक-निपुणे, हे मा! आप श्री की दिव्य ग्रीवा में तीन रेखायें चमकती हैं। उनकी शोभा विवाह काल में पहिनाई जानेवाली त्रिदोरी (सौभाग्य-दोरी) वत् झलकती है। वे तीन रेखायें सप्त स्वरों के तीन ग्रामवत् दीखती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो गानविद्या के सर्व साधनों तथा स्वरों को इन तीन ग्राम-रूप दोरियों से बाँधकर इन स्वरादि की मर्यादा नियत कर दी गई हो।

गानविद्या के दो भेद कहे गये हैं—१ मार्ग और २ देशी। 'मार्ग' गानविद्या को ब्रह्मगीत भी कहते हैं। देशी गानविद्या देश की भिन्नता के अनुसार पृथक्-पृथक् है।

ग्रामत्रय—षडज, मध्यम, गान्धार (स्वर)। अन्तिम ग्राम इस भू पर प्रचलित था, ऐसी मान्यता है।

७० ध्यान—मृ = म + ऋ—इन दोनों का ध्यान क्रमशः पृष्ठ १६ और ७८ पर दिया है।

बीजाक्षर—'मृ'; जपसंख्या—१०००; जपस्थान—विशुद्धिचक्र; होम—तिल, शर्करा और जपाकुसुम से—१०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोकपाठ-आहुति—५; पूजन-यन्त्र—

ह्रीं
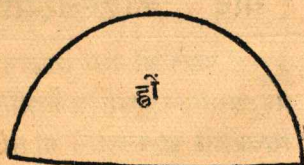
मृणालीमृद्वीनां तव भुजलतानां चतसृणां।
चतुर्भिः सौन्दर्यं सरसिजभवः स्तौति वदनैः॥
नखेभ्यः सन्त्रस्यन्प्रथममथनादन्धकरिपोः।
चतुर्णां शीर्षाणां सममभयहस्तार्पणधिया ॥७०॥

भावार्थ—हे मा! कमलोद्भव श्री ब्रह्मा अपने चार मुखों से आप श्री की चार भुजलताओं के अद्भुत सौन्दर्य की प्रशंसा करते हैं। उनको (श्री ब्रह्मा जी को) अन्धकान्तक श्री भगवान् शिव के नखों का भय है कि जिस प्रकार एक समय श्री ब्रह्मा जी का पाँचवाँ शिर* श्री शिव जी ने अपने नखों से उखाड़ डाला था, उस प्रकार का व्यवहार दूसरे बचे हुये चार शिरों के साथ न किया जाय।

हे मा, चार शिरों से आप श्री की चार भुजाओं के गुण-गान करने का उद्देश्य चारों सिरों का संरक्षण है।

७१ ध्यान—न—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ २३ पर दिया है।

बीजाक्षर—'न'; जपादि विधान उपर्युक्त समान। पूजन-यन्त्र—पृष्ठ ८९ जैसा अर्धवृत्त, उसके मध्य में 'ह्रीं'।

नखानामुद्योतैर्नवनलिनरागं विहसतां।
कराणां ते कान्तिं कथय कथयामः कथमुमे॥
कयाचिद्वा साम्यं भजतु कलया हन्त कमलं।
यदि क्रीडल्लक्ष्मीचरणतललाक्षारुणदलं ॥ ७१॥

---

* पहले श्री परम शिववत् श्री ब्रह्मा जी पञ्चशिर थे परन्तु जब उन्हें यह अभिमान हुआ कि मैं श्री परम शिववत् शक्तिमान हूँ, तब उचित शिक्षा देने की इच्छा से श्री परम शिव ने उनका शिर अपने नख से उखाड़ डाला था।

भावार्थ—हे मा, उमा! आप श्री के कर-कमल की कान्ति का, जिनके नख-ज्योति की आभा नवजात कमल की शोभा को मात करती है, वर्णन किस प्रकार किया जाय, आप ही बताएँ! श्री लक्ष्मी जी कमल कुसुमों पर खेलती डोलती हैं, उनके चरण-कमलों में लगे हुये जावक (लाल रंग) के रंग में लाल हुये कमलों को श्री हस्त से कुछ थोड़ी सी साम्यता मिल सकती है।

७२ ध्यान—'स'—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ १३ पर दिया है।

बीजाक्षर—'स'; जपसंख्या—१०००; जपस्थान—विशुद्धिचक्र; होम—तिल, शर्करा और जपाकुसुम से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन-१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोकपाठ-आहुति—५; पूजन-यन्त्र—
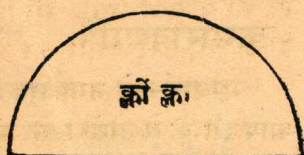
समं देवि स्कन्दद्विपवदनपीतं स्तनयुगं।
तवेदं नः खेदं हरतु सततं प्रस्नुतमुखं॥
यदालोक्याशंकाऽऽकुलितहृदयो हासजनकः।
स्वकुम्भौ हेरम्बः परिमृशति हस्तेन झटिति॥७२॥

भावार्थ—हे मा, हे विश्वपोषिणी जगज्जननि! आप श्री के दिव्य स्तन आप श्री के हम पुत्रों का महदापत्ति से संरक्षण करें। उन पयधाराभरित दिव्य स्तनों का श्री षडानन तथा श्री गजानन एक साथ पान करते हैं। आप श्री के इन उत्तुङ्ग स्तनों को देख कर भ्रम से श्री द्विपिवदन हेरम्ब शीघ्रता से अपने शिरस्थ कुम्भों को छूकर देखते हैं—इस भ्रम से कि श्री मा के स्तनों के स्थान में उनके शिरस्थ कुम्भ-द्वय तो नहीं

चिपक गये। श्री गणेश जी की यह लीलामय क्रिया अत्यन्त विनोदकर हास्य उत्पन्न करनेवाली है।

७३ ध्यान—'अ'—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ५ पर दिया है।

बीजाक्षर—'अ'; जपादि विधान उपर्युक्त समान; पूजन-यन्त्र—पृष्ठ ६१ के समान अर्धवृत्त, उसके मध्य में 'प्लूं' लिखे।

अमू ते वक्षोजावमृतरसमाणिक्यकुतुपौ।
न सन्देहस्पन्दो नगपतिपताके मनसि नः॥
पिबन्तौ तौ यस्मादविदितवधूसङ्गमरसौ।
कुमारावद्यापि द्विरदवदनक्रौञ्चदलनौ ॥७३॥

भावार्थ—हे नगपतिपताके, हे मा! अमृतरस से भरे हुये आप श्री के ये दोनों स्तन माणिक्य के दो कुम्भ हैं, इस विषय में हमारे मन में तनिक भी सन्देह नहीं रहा। श्री गणेश तथा श्री स्कन्द, जो इन सुन्दर घटों में से पान करते हैं, वे वधू-संगम रस से आज भी अज्ञ हैं अर्थात् वे अब भी छोटे-छोटे दूध-पीते बालक हैं (विज्ञानानन्द में वे इतने मस्त हैं कि वे सदैव बालवत् ही रहते हैं)

७४ ध्यान—व—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ७ पर दिया है।

बीजाक्षर—'व'; जपादि विधान उपर्युक्त समान; पूजन-यन्त्र—पृष्ठ ६१ जैसा अर्धवृत्त, उसके मध्य में 'ह्लूं'।

वहत्यम्ब स्तम्बेरमदनुजकुम्भप्रकृतिभिः।
समारब्धां मुक्तामणिभिरमलां हारलतिकां॥
कुचाभोगो बिम्बाधररुचिभिरन्तः शबलितां।
प्रतापव्यामिश्रां पुरदमयितुः कीर्तिमिव ते ॥७४॥

भावार्थ—हे मा, हे विश्वजननि ! आप श्री ने जो 'स्तम्बेरम-दनुज'—गजासुर दैत्य के सिर से निकली हुई गज मुक्ताओं का हार पहना है, वह आप श्री के कुच-देश में लटकता हुआ अत्यन्त शोभा पा रहा है। आप श्री के बिम्बाधर की छाया से रंग का सम्मिश्रण परम दिव्य हो रहा है। श्री त्रिपुरहर के प्रबल प्रताप-रंगों के मिश्रण-समान वह रंग श्री कीर्तिरूप से झलक रहा हो, ऐसा प्रतीत होता है।

७५ ध्यान—'त'—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ४ पर दिया है।

बीजाक्षर—'त'; जपादि विधान उपर्युक्त-समान; पूजन-यन्त्र—पृष्ठ ६१ जैसा अर्धवृत्त, उसके मध्य में 'श्लूं' लिखे।

तव स्तन्यं मन्ये धरणिधरकन्ये हृदयतः।
पयः पारावारः परिवहति सारस्वतमिव ॥
दयावत्या दत्तं द्रविडशिशुरास्वाद्य तव य-
त्कवीनां प्रौढानामजनि कमनीयः कवयिता ॥७५॥

भावार्थ—हे गिरिराजकन्ये, हे मा ! मेरी धारणा है कि आप श्री के हृदयाब्ज से उछलता हुआ कविता-सागर स्तनों में से पय-रूपेण बहता है। आप श्री की दया-द्वारा पिलाये हुये उस दूध से मैं द्रविड़* बालक कवियों में एक उत्तम कवि हो गया हूँ।

---

* स्तवनकार श्री शङ्कर भगवत्पाद जन्मना द्रविड़ ब्राह्मण थे। पूज्यपाद शङ्कर के पिता श्री महाविद्या के श्रेष्ठ उपासकों में से थे। जिस ग्राम में वे रहते थे, उसमें श्री भगवती का एक मन्दिर था। वहाँ एक कुण्ड भी था। वे नित्य उस कुण्ड में स्नान कर श्री मां को पञ्चामृत से स्नान कराकर श्री भगवती का पूजन किया करते थे। पञ्चामृत में से

७६ ध्यान—'ह' इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ८ पर दिया है।

बीजाक्षर—'ह'; जपसंख्या—१०००; जपस्थान—आज्ञाचक्र; होम—मधु, पायस, देवीपुष्प और बिल्वपत्र से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोकपाठ-आहुति—६; पूजन-यन्त्र—
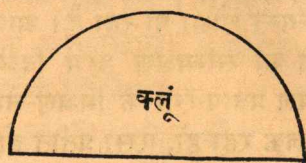
दूध आदि जो निर्माल्य बच जाता था, उसे वे वापिस घर ले जाते तथा वह प्रसादवाला दूध अपने छोटे बालक को पिलाते थे। एक समय थोड़े दिनों के लिए उन्हें कहीं बाहर जाना पड़ा। उन्होंने अपनी स्त्री को नित्य का पूजन-विधान समझा कर कहा कि 'जब तक मैं बाहर से लौट न आऊँ, श्री मा के मन्दिर में जाकर नित्य पूजन करना।' इस प्रकार मन्दिर की नित्यपूजा का कार्य अपनी स्त्री को सौंपकर वे स्वकार्यार्थ विदेश चले गये। उनकी स्त्री पति के आज्ञानुसार मन्दिर में नित्य पूजा करने लगी। मासिक धर्म काल में हिन्दू प्रथानुसार उन्हें अलग बैठना पड़ा। तब उन्होंने अपने बालक पुत्र को पूजा-विधान समझाकर मन्दिर में पूजार्थ भेजा। बालक अज्ञान था। उसने जाना कि यह दूध भी भगवती के पीने का है। पूजाकाल में जब श्री मा की मूर्ति ने न पिया तब उस बालक ने मा की मूर्ति से दूध पीने के लिये अत्यन्त हठ किया। ऐसा कहते हैं कि बालक के भोले और प्रेममय हठ से प्रसन्न होकर श्री मा प्रकट हो गयीं तथा उन्होंने बालक के हाथ से पात्र लेकर सब दूध पी लिया। जब बालक (भावी श्री शङ्कर भगवत्पाद) ने यह देखा कि मा तो सब दूध पी गयीं और उसको नित्य मिलता हुआ भाग नहीं बचा तब वह खीझकर रोने लगा। श्री भगवती मा ने उस शुद्ध-हृदय बालक को रोता हुआ देखकर दया से उसे स्तनपान कराया। उस समय से उस बालक

हरक्रोधज्वालावलिभिरवलीढेन वपुषा।
गभीरे ते नाभीसरसि कृतसङ्गो मनसिजः॥
समुत्तस्थौ तस्मादचलतनये धूमलतिका।
जनस्तां जानीते तव जननि रोमावलिरिति॥७६॥

भावार्थ—हे मा, हे गिरिकन्ये! श्री मनसिज भगवान् श्री महाशिव के तृतीय नेत्र से उत्पन्न क्रोधाग्नि की ज्वाला से दग्ध होते हुये आप श्री के गम्भीर नाभिसर में कूद गोता खाकर डूब गये। पश्चात् उस दिव्य नाभि-सरोवर में से एक धूम-लतिका (लता के समान धुवाँ) उत्पन्न हुई। हे मा! उस धूम-लतिका को विश्व आप श्री की रोमावली के नाम से जानता है।

७७ ध्यान—य—धूम्रवर्णां महारौद्रीं षड्भुजां रक्तलोचनां।
रक्ताम्बरपरीधानां नानालङ्कारभूषितां॥
महामोक्षप्रदां नित्यामष्टसिद्धिप्रदायिनीं।
एवं ध्यात्वा यकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्॥
त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिबिन्दुसहितं प्रिये।
प्रणमामि सदा दिव्यं शक्तिं श्रीमोक्षमव्ययम्॥
वकारं शृणु चार्वङ्गि चतुर्वर्गमयं सदा।
पलालधूमसङ्काशं स्वयं परमकुण्डली।
पञ्चप्राणमयं वर्णं पञ्चदेवमयं तथा॥

बीजाक्षर—'य'; जप-संख्या—१०००; जप-स्थान—आज्ञाचक्र; होम—मधु, पायस, देवीपुष्प और बिल्वपत्र से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोकपाठ आहुति—६; पूजन-यन्त्र—
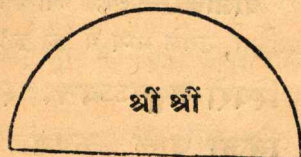
के मुख से अद्भुत काव्यधारा बहने लगी तथा वह श्रेष्ठ कवि हो गया। पिता के लौटने पर थोड़े दिनों में उन्होंने संन्यास ले लिया।

यदेतत्कालिन्दीतनुतरतरङ्गाकृति शिवे।
कृशे मध्ये किञ्चिज्जननि तव तद्भाति सुधियां॥
विमर्दादन्योन्यं कुचकलशयोरन्तरगतं।
तनूभूतं व्योम प्रविशदिव नाभिं कुहरिणीं॥७७॥

भावार्थ—हे अम्बे, हे मेरी माता! तेरी पतली कमर में एक वस्तु जो यमुना तरङ्गवत् है, वह सुधी लोगों के मत से आप श्री के कुचमध्यान्तर्गत अवकाश में दोनों कुचों के संघर्षण के दबाव से खिसक कर नाभि में प्रवेश करती प्रतीत होती है। एक वस्तु—रोमावलि। कालिन्दी जल काला (श्याम) है, आकाश का रंग भी तद्वत् है।

७८ ध्यान—स्थि = स् + थ् + इ = बीजाक्षर 'स्' का ध्यान पृष्ठ १३ पर और 'इ' का पृष्ठ २ पर दिया है।

थ— नीलवर्णां त्रिनयनां षड्भुजां वरदां परां।
पीतवस्त्रपरीधानां सदासिद्धिप्रदायिनीं॥
एवं ध्यात्वा थकारं तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।
पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं शिवे॥
तरुणादित्यसङ्काशं थकारं प्रणमाम्यहं।
थकारं चञ्चलापाङ्गि कुण्डली मोक्षरूपिणी॥
त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिबिन्दुसहितं प्रिये।

बीजाक्षर—स्थि; जपादि विधान उपर्युक्त समान; पूजन-यन्त्र—अर्द्धवृत्त, उसके मध्य में 'क्लीं क्लः'।

स्थिरो गङ्गाऽऽवर्तः स्तनमुकुलरोमावलिलता।
निजा वालं कुण्डं कुसुमशरतेजोहुतभुजः॥
रतेर्लीलागारं किमपि तव नाभिर्गिरिसुते।
बिलद्वारं सिद्धेर्गिरिशनयनानां विजयते॥७८॥

भावार्थ—हे गिरिजे, हे मा ! आप श्री की सुन्दर नाभि की जय हो, जिसका निम्न प्रकार से वर्णन किया जा सकता है—

१—श्री गङ्गा जी की स्थिर भँवर, २—स्तन-रूपकलीवाली नीचे की ओर फैली हुई लता (रोमावलिलता), की क्यारी ३—श्री मनसिज कामदेव के तेजरूप अग्नि का कुण्ड, ४—श्री भगवती रति का लीलागार, ५—श्री योगेश शिव के नेत्रों की योगसिद्धिदा वह गिरि-गुहा, जिसमें बैठकर आराधना करते हुये श्री भगवान् शिव के नेत्र शान्ति चाहते हैं।

७९ ध्यान—नि = न् + इ—इन दोनों का ध्यान क्रमशः पृष्ठ २३ और २ पर दिया है।

बीजाक्षर—'नि'; जपसंख्या—२०००; जपस्थान—आज्ञाचक्र; होम—मधु, पायस, देवीपुष्प और बिल्वपत्र से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोक-पाठ आहुति—६; पूजन-यन्त्र—

निसर्गक्षीणस्य स्तनतटभरेण क्लमजुषो।
नमन्मूर्तेर्नाभौ बलिषु च शनैस्त्रुट्यत इव॥
चिरं ते मध्यस्य त्रुटिततटिनीतीरतरुणा।
समावस्थास्थेम्नो भवतु कुशलं शैलतनये॥७९॥

भावार्थ—हे शिवे, हे मा ! आप श्री की उस क्षीण कटि का सदैव कुशल हो, जो स्वभावतः क्षीण है, इतनी सुकुमार है कि नाभि (के नीचे) तथा दुहरान पर टूटकर गिर पड़ती सी दीखती है और जिसकी दृढ़ता नदी-तीर के वृक्षवत्

अनिश्चित है। नदी-तीर का वृक्ष कभी भी नदी की धार में बह जा सकता है।

८० ध्यान—कु=क्+उ—इन दोनों का ध्यान क्रमशः पृष्ठ ११ और १४ पर दिया है।

बीजाक्षर—'कु'; जपसंख्या—१०००; जपस्थान—आज्ञाचक्र; होम—मधु, पायस, देवीपुष्प और बिल्वपत्र से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोकपाठ आहुति—६; पूजन-यन्त्र-

प्रौं
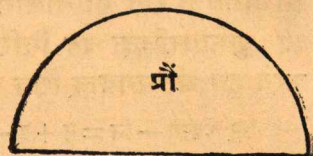
कुचौ सद्यः स्विद्यत्तटघटितकूर्पासभिदुरौ।
कषन्तौ दोर्मूले कनककलशाभौ कलयता॥
तव त्रातुं भङ्गादलमिति वलग्नं तनुभुवा।
त्रिधा नद्धं देवि त्रिवलि लवलीवल्लिभिरिव॥८०॥

भावार्थ—हे मा! आप श्री की त्रिभङ्गाकटि को श्रीभगवान् मदन ने लवलीवल्लिलता से तीन बार कस कर बाँधा है, जिससे वह टूट न जाय। उन भगवान् मकरध्वज ने आप श्री के कनककलशोपम कुचद्वय से (प्रस्वेद के कारण) वस्त्र हटाकर आपको बगल में रगड़ने पर बाध्य किया।

इस श्लोक में मदनोन्माद से पसीना उत्पन्न होने के कारण वक्ष से वस्त्र हटाकर बगल से पसीना पोछने का भाव कहा है।

८१ ध्यान—गु=ग+उ—इन दोनों का ध्यान क्रमशः पृष्ठ ६४ और १४ पर दिया है।

बीजाक्षर—'गु'; जप-संख्या—१०००; जप-स्थान—आज्ञाचक्र; होम—मधु, पायस, देवीपुष्प और बिल्वपत्र से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोकपाठ आहुति—६; पूजन-यन्त्र—
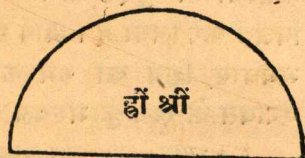
गुरुत्वं विस्तारं क्षितिधरपतिः पार्वति निजा-
न्नितम्बादाच्छिद्य त्वयि हरणरूपेण निदधे ॥
अतस्ते विस्तीर्णो गुरुरयमशेषां वसुमतीं ।
नितम्बप्राग्भारः स्थगयति लघुत्वं नयति च ॥८१॥

भावार्थ—हे मा, हे भगवति ! श्री पर्वतराज ने हरण (कन्या-धन) रूप से आपको अपने नितम्ब से निकाल कर गुरुत्व तथा विस्तार प्रदान किया है। अतः ये आपके नितम्ब चौड़े तथा भारी हैं तथा इस सारी पृथ्वी के गुरुत्व की महिमा को हरण कर उसे लघु बना देते हैं (पृथ्वीबीज लं)।

८२ ध्यान—'क'—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ११ पर दिया है।

बीजाक्षर—'क'; जपसंख्या—१०००; जपस्थान—आज्ञाचक्र; होम—मधु, पायस, देवीपुष्प और बिल्वपत्र से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोकपाठ-आहुति—६; पूजन-यन्त्र—
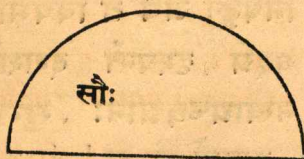
सौः

करीन्द्राणां शुण्डान् कनककदलीकाण्डपटली-
मुभाभ्यामूरुभ्यामुभयमपि निर्जित्य भवती ॥
सुवृत्ताभ्यां पत्युः प्रणतिकठिनाभ्यां गिरिसुते ।
विजिग्ये जानुभ्यां विबुधकरिकुम्भद्वयमपि ॥८२॥

भावार्थ—हे हिमसुते, हे मा! आप श्री की सुरम्य जंघाओं ने हाथी की शुण्ड तथा कनककदली-स्तम्भ इन दोनों को विजय कर लिया है। आप श्री के गोल कमनीय घुटनों ने, जो भगवान् शिव को नमस्कार करते-करते कठिन हो गये हैं, ऐरावत के रम्य कुम्भस्थल को हरा दिया है।

८३ ध्यान—प—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ७५ पर दिया है।
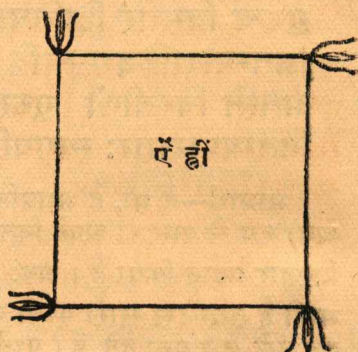
बीजाक्षर—'प'; जपसंख्या—१०००; जपस्थान—आज्ञाचक्र; होम—मधु, पायस, देवीपुष्प और बिल्वपत्र से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोकपाठ आहुति—६; पूजन-यन्त्र—

पराजेतुं रुद्रं द्विगुणशरगर्भौ गिरिसुते।
निषङ्गौ जंघे ते विषमविशिखो बाढमकृत॥
यदग्रे दृश्यन्ते दशशरफलाः पादयुगली-
नखाग्रच्छद्मानः सुरमुकुटशाणैकनिशिताः॥८३॥

भावार्थ—हे मा! श्री भगवान् रुद्र को युद्ध में जीतने की इच्छावाले श्री विषम विशिख भगवान् मकरध्वज ने अपना पञ्चबाणात्मक निषंग आप श्री की दोनों जंघाओं को बनाकर बाण द्विगुणित कर दिये हैं (अर्थात् एक जंघा-निषङ्ग में पाँच बाण तथा दूसरे जंघा-निषङ्ग में पाँच)। हे मा, उन दश बाणों के फल आप श्री के युगल पद में नखरूप से दिख रहे

हैं तथा उन श्री पदों में देवताओं के मुकुट-मणि का सदैव घर्षण होने से शरधार अधिक पैनी होती जा रही है (क्लीं बीज)।

८४ ध्यान—श्रु = श् + र् + उ—इन तीनों का ध्यान क्रमशः पृष्ठ १, ३७ और १४ पर दिया है।

बीजाक्षर--'श्रु'; जपसंख्या-१०००; जपस्थान—आज्ञाचक्र; होम—मधु, पायस, देवीपुष्प और बिल्वपत्र से १०० या १०; तर्पण--१०; मार्जन--१०; श्लोकपाठ--१०; श्लोकपाठ आहुति---६; पूजन-यन्त्र—
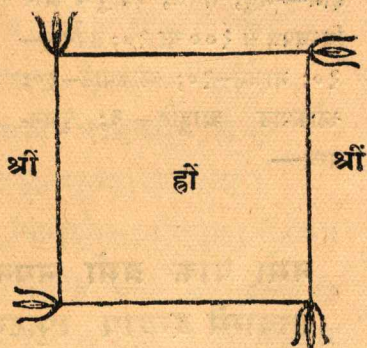
श्रुतीनां मूर्द्धानो दधति तव यौ शेखरतया ।
ममाप्येतौ मातः शिरसि दयया धेहि चरणौ ॥
ययोः पाद्यं पाथः पशुपतिजटाजूटतटिनी ।
ययोर्लाक्षालक्ष्मीररुणहरिचूडामणिरुचिः ॥८४॥

भावार्थ—हे मा, हे दयामयि ! आप श्री के दिव्य चरण, जिनको वेद-वेदाङ्ग के प्रधान देव शिरोमुकुटवद्धारण करते हैं और जिनके धोवन से वे श्री गङ्गा जी प्रकट हुई हैं, जिन्हें भगवान् पशुपति ने अपनी जटा में धारण किया है तथा जिन श्री चरणों में लगा हुआ महावर श्री हरि मुकुटस्थ कौस्तुभ-मणि के समान चमकता है, वे श्री चरण—वे परमपूज्य चरण, हे मा ! आप कृपया मुझ दास के सिर पर रक्खें।

८५ ध्यान—न—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ २३ पर दिया है।

बीजाक्षर—'न'; जपसंख्या—१०००; जपस्थान—आज्ञाचक्र; होम—मधु, पायस, देवीपुष्प और बिल्वपत्र से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोकपाठ आहुति—६; पूजन-यन्त्र—
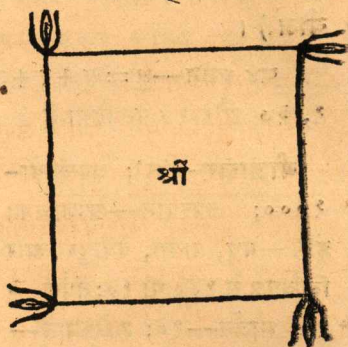
नमो वाकं ब्रूमो नयनरमणीयाय पदयो-
स्तवास्मै द्वन्द्वाय स्फुटरुचिरसालक्तकवते ॥
असूयत्यत्यन्तं यदभिहननाय स्पृहयते।
पशूनामीशानः प्रमदवनकङ्केलितरवे ॥८५॥

भावार्थ—हे मा! आपके इन दोनों श्री चरणों में, जो अत्यन्त सुन्दर और अति शुभ्र हैं तथा महावर से रंगे हुये हैं, हमारा बारम्बार अष्टाङ्ग प्रणाम है। हे मा, आप श्री के सुन्दर बगीचे में लगे हुये कङ्केलि* वृक्ष को श्री पशुपतिनाथ अत्यन्त ईर्षा की दृष्टि से देखते हैं क्योंकि इन वृक्षों को आप श्री के चरण कमल की ठोकर लगा करती है।

श्री शिव की ईर्षा का कारण यह कि उन कंकेलि वृक्षों का यह अहोभाग्य है कि वे श्री अनन्ता मा के चरणों की ठोकर

---

* यह एक प्रकार का पुष्पवृक्ष है, जिसमें सुन्दर पद्मिनी स्त्री के पग की ठोकर लगे बिना फूल उत्पन्न नहीं होते—ऐसी पुरानी कथा है।

के पात्र हैं। इस सौभाग्य-प्राप्ति की भगवान् शिव को भी इच्छा होती है।

८६ ध्यान—मृ=म्+ऋ—इन दोनों का ध्यान क्रमशः पृष्ठ १६ और ७८ पर दिया है।

बीजाक्षर—'मृ'; जपादि उपर्युक्त समान; पूजन-यन्त्र—पृष्ठ १०१ जैसा चतुष्कोण, उसमें 'श्रीं ह्रीं श्रीं' के स्थान पर 'ह्रीं हं क्लीं' लिखे।

मृषा कृत्वा गोत्रस्खलनमथ वैलक्ष्यनमितं।
ललाटे भर्तारं चरणकमले ताडयति ते॥
चिरादन्तः शल्यं दहनकृतमुन्मूलितवता।
तुलाकोटिक्वाणैः किलिकिलितमीशानरिपुणा॥८६॥

भावार्थ—हे मा! जब आप श्री ने अपने श्री चरणों से शिव-जटा का ताड़न किया अर्थात् शिव-जटा में श्री गङ्गभार असह्य हो जाने से जब आप श्री ने भारतम हरण करने की इच्छा से श्री शिव-जटा को अपने श्री चरणों से स्पर्श किया तथा उस स्पर्श मात्र से श्री गङ्गा महावेग तम दब गया तब आप श्री की अमोघ शक्ति के आगे भगवान् श्री शिव का शिर नम्रता से झुक गया। उस समय भगवान् मदन अपने देह को भस्म कर उन्मूल कर देनेवाले श्री शिव का मान-खण्डन होते देखकर आनन्द से किल-किल हास्य करने लगे।

८७ ध्यान—हि=ह्+इ—इन दोनों का ध्यान क्रमशः पृष्ठ ८ और २ पर दिया है।

बीजाक्षर—'हि'; जपादि विधान उपर्युक्त-समान; पूजन-यन्त्र—पृष्ठ १०२ जैसा चतुष्कोण, उसमें 'हं श्रीं सः' के स्थान पर 'रं क्लीं द्रं' लिखे।

हिमानीहन्तव्यं हिमगिरिनिवासैकचतुरौ ।
निशायां निद्राणं निशि च परभागे च विशदौ ॥
वरं लक्ष्मीपात्रं श्रियमतिसृजन्तौ समयिनां ।
सरोजं त्वत्पादौ जननि जयतश्चित्रमिह किं ॥८७॥

भावार्थ—हे मा ! आप श्री के चरण कमल हिम-भरे हिमालय में रहने के अभ्यासी हैं। दिन-रात दिव्य काशवत् खिले रहते हैं तथा स्वभक्तों को परम श्रेय देनेवाले हैं। वे कमल से कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं। इसमें आश्चर्य ही क्या है ! कमल तो हिम से गल जाते हैं; रात्रि को सो जाते हैं, उन्हें श्री लक्ष्मी जी की कृपा दृष्टि पाने का सौभाग्य बहुत कम मिलता है।

८८ ध्यान—प—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ७० पर दिया है।

बीजाक्षर—'प'; जपसंख्या—१०००; जपस्थान—आज्ञाचक्र; होम—मधु, पायस, देवीपुष्प और बिल्वपत्र से १०० या १०; तर्पण—१०; मार्जन—१०; श्लोकपाठ—१०; श्लोकपाठ आहुति—६; पूजन-यन्त्र—

क्लीं
क्लीं क्लीं
क्लीं
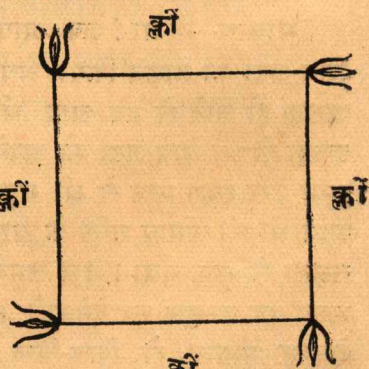
पदं ते कीर्तीनां प्रपदमपदं देवि विपदां ।
कथं नीतं सद्भिः कठिनकमठीखर्परतुलां ॥
कथंचिद्बाहुभ्यामुपयमनकाले पुरभिदा ।
यदादाय न्यस्तं दृषदि दयमानेन मनसा ॥८८॥

भावार्थ—हे मा, हे महेश्वरि ! यह समझ में नहीं आता कि आप श्री के कीर्ति-स्थान, आपत्ति-रहित तथा जिन चरणों को विवाह-काल में श्री महाशिव ने अत्यन्त करुणार्द्र हृदय से उठाकर पाषाण पर रक्खा था, ऐसे सुकोमल श्री चरणों के अग्रभाग को श्रेष्ठ सत्पुरुषों ने कठिन कमठ-खर्पर (कछुवे की पीठ) की उपमा क्यों कर दी होगी ?

८६ ध्यान—न—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ २३ पर दिया है।

बीजाक्षर—'ग'; जपादि विधान उपर्युक्त समान; पूजन-यन्त्र—पृष्ठ १०२ जैसा चतुष्कोण, उसमें 'हं श्रीं सः' के स्थान पर 'सोः ह्रीं सौः' लिखे।

नखैर्नाकस्त्रीणां करकमलसङ्कोचशशिभि—
स्तरूणां दिव्यानां हसत इव ते चण्डि चरणौ ॥
फलानि स्वः स्थेभ्यः किसलयकराग्रेण ददतां।
दरिद्रेभ्यो भद्रां श्रियमनिशमह्नाय ददतौ ॥८९॥

भावार्थ—हे मा, हे चण्डि ! आप श्री के युगल-चरण, जो गरीबों की सर्वकामना पूर्ण करनेवाले तथा सदा बहुधन देनेवाले हैं, कल्पवृक्ष वन पर हँसते हैं—यह बताते हुए कि गरीबों की सर्वकामना-सिद्धि-शक्ति तो आप श्री के चरणों के अँगूठे के नख में है। कल्पवृक्षादि तो जिनको आवश्यकता नहीं, ऐसी धनाढ्य देव-शक्तियों की कामनाओं को अपने कोंपलरूप अँगुलियों से पूर्ण करते हैं परन्तु मा भगवती विश्व के सब गरीबों की मनोकामनाओं को पूर्ण करनेवाली है। हे मा, आप श्री के दिव्य चरणों के अँगूठों के नखों की ज्योति बहुत से चन्द्रमाओं के समान है, जिनकी बहुदेव-स्त्रियाँ वन्दना करती हैं। जिस प्रकार चन्द्रोदय होने से कमल बन्द हो जाता है,

उसी प्रकार उन देव-स्त्रियों के कर-कमल आप श्री के चरण-नख की वन्दना में बन्द हो जाते हैं तथा कुछ दे नहीं सकते।

९० ध्यान—द—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ७७ पर दिया है।

बीजाक्षर—'द'; जपादि विधान उपर्युक्त समान। पूजन-यन्त्र—पृष्ठ १०२ जैसा चतुष्कोण, उसमें 'हं श्रीं सः' के स्थान पर 'ऐं क्लीं सौः' लिखे।

ददाने दीनेभ्यः श्रियमनिशमाशाऽनुसदृशी—
ममन्दं सौन्दर्यप्रकरमकरन्दं विकिरति॥
तवास्मिन्मन्दारस्तबकसुभगे यातु चरणे।
निमज्जन्मज्जीवः करणचरणः षट्चरणताम्॥९०॥

भावार्थ—हे मा, हे महेश्वरि! आप श्री के चरणकमल, जो निराधार गरीबों को उनकी आवश्यकतानुसार द्रव्य देनेवाले हैं, दीनों की आशा पूर्ण करनेवाले हों। हे मा, मेरा जीवात्मा छः पैरवाली उस मधु-मक्षिका के समान हो, जो सौन्दर्य-छटा की अखण्ड मधु-धारा को बनाने तथा चोषण करनेवाली है। आप श्री के मन्दार-मकरन्द-सम दिव्य रसमय श्री चरणों का यह प्रताप है कि उनसे दीनजन सदैव पोषण पाते हैं।

९१ ध्यान—प—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ७५ पर दिया है।

बीजाक्षर—'प'; जपादि विधान उपर्युक्त समान। पूजन-यन्त्र—पृष्ठ १०२ जैसा चतुष्कोण, उसमें 'हं श्रीं सः' के स्थान पर 'सौः क्लीं ऐं' लिखे।

पदन्यासक्रीडापरिचयमिवारब्धुमनस—
श्चरन्तस्ते खेलं भवनकलहंसा न जहति॥
स्वविक्षेपे शिक्षां सुभगमणिमञ्जीररणित—
च्छलादाचक्षाणं चरणकमलं चारुचरिते॥९१॥

भावार्थ—हे परमेश्वरि, हे मा, हे चारुचरिते ! आप श्री के पाले हुए हंस भी आप श्री के चरण-कमल को नहीं छोड़ते। वे आप श्री की चरणगति से शिक्षा पाकर हंसगति-गमन का अभ्यास करते हैं। उनके मणि मञ्जीर पगनूपुर अत्यन्त मधुर कलामय स्वर निकालते हैं।

६२ ध्यान—ग—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ६४ पर दिया है।

बीजाक्षर—'ग'; जपसंख्या—१०२०; जप-स्थान—सहस्रारचक्र; होम—द्राक्षा, बिल्वफल, पायस और रक्तकमल से १०२ या १२; तर्पण—१२; मार्जन—१२; श्लोक-पाठ-संख्या—१२; श्लोकपाठ आहुति—८; पूजन-यन्त्र—
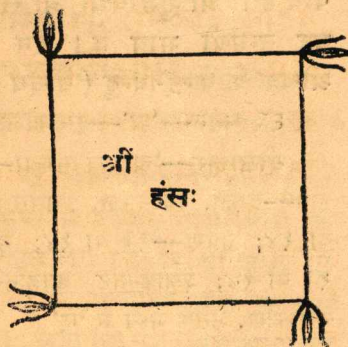
गतास्ते मञ्चत्वं द्रुहिणहरिरुद्रेश्वरभृतः।
शिवः स्वच्छच्छायाघटितकपटप्रच्छदपटः॥
त्वदीयानां भासां प्रतिफलनरागारुणतया।
शरीरी शृङ्गारो रस इव दृशां दोग्धिकुतुकं ॥९२॥

भावार्थ—हे मा ! आप श्री के चार सेवकों—द्रुहिण, हरि, रुद्र और ईश्वर—से आप श्री का मञ्च बना है। श्री शिव आप श्री के स्फटिक-वर्ण बिस्तर हैं। वे आप श्री की अरुण वर्ण की आभा से रक्त देहवाले दीखते हैं। उनके शरीर में झलकती हुई आपके श्री देह की वह रक्त छाया आप श्री के रसमय नेत्रों को आनन्द देती है।

षट्चक्र के मूलाधार से आज्ञापर्यन्त षट्तत्त्व कहे हैं—भू, जल, अग्नि, वायु, आकाश और मनस्। फिर दश इन्द्रियों के २१ तत्त्व हैं। इनके परे चार तत्त्व हैं—माया, विद्या, महेश्वर और सदाशिव। इन चारों का स्थान श्रीचक्रभूपुर के चार द्वारों पर है। चक्र की पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर इन दैवतों का स्थितिक्रम है। ये चार महातत्त्व आप श्री के पर्यङ्क के चार पाये हैं। श्री शुद्धविद्या श्री सदाशिव के साथ एकरूपा है। यह तन्मयी भाव है। इन दोनों—शिव-शक्ति—की एकता श्रीचक्र के केन्द्र-बिन्दु (बैन्दव स्थान) में कही है।

६३ ध्यान—'अ'—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ५ पर दिया है।

बीजाक्षर—'अ'; जपसंख्या—१०३०; जप-स्थान—सहस्रारचक्र; होम—द्राक्षा, बिल्वफल, पायस और रक्तकमल से १०३ या १३ या १४; तर्पण—१३ या १४; मार्जन—१३ या १४; श्लोक-पाठ—१३ या १४; श्लोक-पाठ आहुति—६; पूजन-यन्त्र—पृष्ठ १०७ जैसा चतुष्कोण, उसके मध्य में 'ऐं'।

अराला केशेषु प्रकृतिसरला मन्दहसिते।
शिरीषाभा गात्रे दृशदिव कठोरा कुचतटे॥
भृशं तन्वी मध्ये पृथुरपि वरारोहविषये।
जगत्त्रातुं शम्भोर्जयति करुणा काचिदरुणा॥९३॥

भावार्थ—हे मा ! आप श्री का वर्ण अरुण होने से आप अरुणा हो। भगवान् शिव की आप लावण्य तथा श्री हो। आप श्री के केश घुँघराले हैं। आप श्री का स्मित सहज हास्य है। आप श्री के शरीर की आभा शिरीषवत् है। कुच पाषाणवत् कठोर हैं। कटि अत्यन्त सूक्ष्म है तथा आप श्री के पृथु (जाँघ के जोड़) की श्री विश्वकल्याणकर है (अरुणा-कामेश्वरी)।

६४ ध्यान—'स'—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ १३ पर दिया है।

बीजाक्षर—'स'; जपसंख्या—१०४०; जपस्थान—सहस्रारचक्र; होम—द्राक्षा, बिल्वफल, पायस और रक्तकमल से १०४ या १४; तर्पण—१४; मार्जन—१४; श्लोकपाठ—१४; श्लोकपाठ आहुति—१०; पूजन-यन्त्र—चतुष्कोण, उसके मध्य में 'श्रीं श्रीं' लिखे।

समानीतः पद्भ्यां मणिमुकुरतामम्बरमणि—
र्भयादास्यादन्तः स्तिमितकिरणश्रेणिमसृणः॥
दधाति त्वद्वक्त्रप्रतिफलनमश्रान्तविकचं।
निरातङ्कं चन्द्रान्निजहृदयपंकेरुहमिव ॥९४॥

भावार्थ—हे मा! आप श्री के चरण-मणि से बना हुआ सूर्य आप श्री का मुकुर हो सकता है परन्तु अत्युष्णता के कारण न तो वह सम्मुख आ सकता है, न मुकुर का काम ही दे सकता है। श्री सूर्य-किरण में से उष्णता हरण कर सूर्य युक्त मुकर-रूप बन सकता है। आप श्री का मुकुर आप ही हो। श्री सूर्य का हृत्कमल श्री मा के समक्ष सदैव खिला रहता है क्योंकि उसको चन्द्रोदय का भय नहीं रहता। इस कारण वह कमल आप श्री के मुख-कमल की कुछ साम्यता कर सकता है। भाव यह है कि श्री मा के वदन की छाया श्री सूर्य के मुकुर में पड़ने से श्री मा का कमल-वदन सूर्य के हृदय में छप जाता है। श्री मा के ही मुख-कमल की छाया सूर्य-हृदय में होने से सूर्य-हृदस्थ कमल सदैव प्रफुल्लित दीखता है।

६५ ध्यान—'क'—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ११ पर दिया है।

बीजाक्षर—'क'; जपसंख्या—१०५०; जपस्थान—सहस्रारचक्र; होम—द्राक्षा, बिल्वफल, पायस और रक्तकमल से १०५ या १५;

तर्पण—१५; मार्जन—१५; श्लोकपाठ—१५; श्लोकपाठ आहुति—११;
पूजन-यन्त्र—चतुष्कोण उसके मध्य में 'क्लीं'।

कलङ्कः कस्तूरी रजनिकरबिम्बं जलमयं।
कलाभिः कर्पूरैर्मरकतकरण्डं निबिडितं॥
अतस्त्वद्भोगेन प्रतिदिनमिदं रिक्तकुहरं।
विधिर्भूयो भूयो निबिडयति नूनं तव कृते ॥९५॥

भावार्थ—हे मा! श्री चन्द्र की कालिमा कस्तूरी है। श्री रजनिकर चन्द्र का जलमय बिम्ब मरकत मणि का बना हुआ कला-कपूर से भरा करण्डा है। आप श्री के भोग में यह द्रव्य प्रतिदिन खर्च होने से खाली हो जाता है तब श्री ब्रह्मा फिर उस करण्डिये को उन मसालों से भरते हैं।

चन्द्र को इस श्लोक में मरकत मणि के करण्डिये की उपमा दी है, जिसमें श्री भगवती के नैवेद्यार्थ कस्तूरी तथा कपूर भरा हुआ है। श्री भगवती के सेवक ब्रह्मा नित्य उसकी पूर्ति करते हैं।

९६ ध्यान—पु=प्+उ—इन दोनों का ध्यान क्रमशः पृष्ठ ७५ और १४ पर दिया है।

बीजाक्षर—'पु'; जपसंख्या—१०६०; जपस्थान—सहस्रारचक्र; होम—द्राक्षा, बिल्वफल, पायस और रक्तकमल से १०६ या १६; तर्पण—१६; मार्जन—१६; श्लोकपाठ—१६; श्लोकपाठ आहुति—१२; पूजन-यन्त्र—चतुष्कोण, उसके मध्य में 'ऐं'।

पुरारातेरन्तःपुरमसि ततस्त्वच्चरणयोः।
सपर्यामर्यादा तरलकरणानामसुलभा॥
तथा ह्येते नीताः शतमखमुखाः सिद्धिमतुलां।
तव द्वारोपान्तस्थितिभिरणिमाद्याभिरमराः ॥९६॥

भावार्थ—हे मा! आप श्री त्रिपुरारि महाप्रभु के अन्तःपुर में निवास करती हो। इस कारण आप श्री के दिव्य चरणों की सेवा क्षुद्र चञ्चल मनवालों को कदापि नहीं मिल सकती। इन्द्रादि देवताओं को आप श्री की द्वार-सेवा प्राप्त है। इसी कारण वे सर्वसिद्धियों के स्वामी हैं। श्री भगवती की गृह-मर्यादा का उल्लंघन करने की सामर्थ्य देवताओं में भी नहीं है, साधारण मनुष्यों की तो कहना ही क्या (प्रशान्त चित्त से यदि मा की उपासना न की जाय तो साधक को उच्चाटनादि विक्षेप होते हैं)।

९७ ध्यान—'क'—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ११ पर दिया है।

बीजाक्षर—'क'; जपसंख्या—१०७०; जपस्थान—सहस्रारचक्र; होम—द्राक्षा, बिल्वफल, पायस, बिल्वफल और कमल से १०७ या १७; तर्पण—१७; मार्जन—१७; श्लोकपाठ—१७; श्लोकपाठ-आहुति—१३ या १४; पूजन-यन्त्र—चतुष्कोण, उसके मध्य में 'क्लीं सौः'।

कलत्रं वैधात्रं कति कति भजन्ते न कवयः।
श्रियो देव्याः को वा न भवति पतिः कैरपि धनैः॥
महादेवं हित्वा तव सति सतीनामचरमे।
कुचाभ्यामासङ्गः कुरवकतरोरप्यसुलभः॥९७॥

भावार्थ—हे मा, हे श्री सती भगवति! श्री सरस्वती का स्वामित्व अनेक विद्या-विशारदों ने पाया है। अनेक धनवान लक्ष्मीपति कहाते हैं। आप श्री का कुचालिङ्गन एक श्री महादेव भगवान् शिव के अतिरिक्त किसी ने नहीं पाया। किसी ने तो क्या कुरवक वृक्ष ने भी नहीं पाया।

९८ ध्यान—'गि'=ग् + इ—इन दोनों का ध्यान क्रमशः पृष्ठ ६४ और २ पर दिया है।

बीजाक्षर—'गि'; जपसंख्या—१०८०; जपस्थान—सहस्रारचक्र; होम—द्राक्षा, बिल्वफल, पायस और रक्तकमल से १०८ या १८; तर्पण—१८; मार्जन—१८; श्लोकपाठ—१८; श्लोकपाठ आहुति—१४; पूजन-यन्त्र—चतुष्कोण, उसके मध्य में 'श्रीं'।

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो।
हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयां॥
तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनिस्सीममहिमा।
महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषि॥९८॥

भावार्थ—हे मा, हे परब्रह्ममहिषि! आगमविद् महापुरुष आपको ही द्रुहिणदयिता सरस्वती कहते हैं। आपको ही हरि-कान्ता लक्ष्मी कहते हैं। आपको ही हरवल्लभा गिरिसुता कहते हैं। आप श्री की महालीला से विश्व आश्चर्य-मुग्ध है। दुरधिगमिनी असीम महिमा आप कोई तुरीया अर्थात् चौथी ही वस्तु हो। हे महामाये! आप अपनी विचित्र लीला से विश्व को चक्कर में डाले हो।

९९ ध्यान—'स'—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ १३ पर दिया है।

बीजाक्षर—'स'; जपसंख्या—१०९०; जपस्थान—सहस्रारचक्र; होम—द्राक्षा, बिल्वफल, पायस और रक्तकमल से १०९ या १९; तर्पण—१९; मार्जन—१९; श्लोकपाठ—१९; श्लोकपाठ आहुति—१५; पूजन-यन्त्र—चतुष्कोण, उसके मध्य में 'ऐं'।

समुद्भूतस्थूलस्तनभरमुरश्चारुहसितं ।
कटाक्षे कन्दर्पाः कतिचनकदम्बद्युतिवपुः ॥
हरस्य त्वद्भ्रान्तिं मनसिज नयन्ति स्म विमला।
भवत्या ये भक्ताः परिणतिरमीषामियमुमे ॥९९॥

भावार्थ—हे मा, हे भगवति! उत्तम स्थूल स्तनवाला वक्ष, ललित हास्य, काम कटाक्ष, कदम्बद्रुम की द्युति से युक्त देह—ये सब चिह्न व्यक्ति-देह में देखकर श्री स्मरहर को आपका भ्रम होता है क्योंकि आप श्री के सब भक्त आपका स्वरूप बन जाते हैं (सतत ध्यान से दर्शन, दर्शन से ज्ञान, ज्ञान से तदाकार वृत्ति)।

१०० ध्यान—'क'—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ ११ पर दिया है।

बीजाक्षर—'क'; जपसंख्या—११००; जपस्थान—सहस्रारचक्र; होम—द्राक्ष, बिल्वफल, पायस और रक्तकमल से ११०-२०; तर्पण—२०; मार्जन—२०; श्लोकपाठ—२०; श्लोकपाठ आहुति—१६; पूजन-यन्त्र—
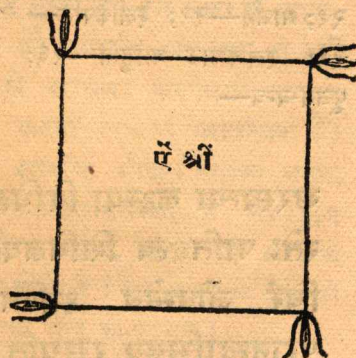
कदा काले मातः कथय कलितालक्तकरसं ।
पिबेयं विद्यार्थी तव चरणनिर्णेजनजलम् ॥
प्रकृत्या मूकानामपि च कविताकारणतया ।
यदा धत्ते वाणी मुखकमलताम्बूलरसताम् ॥१००॥

भावार्थ—हे मा ! दयाकर बताइये कि मैं, जो विद्या का उपासक हूँ तथा विज्ञान को चाहता हूँ, आप श्री के चरण पखारा हुआ तथा चरण के माहुर से कुछ लाल वर्ण वाला चरणोदक कब पाऊँगा—वह उदक, जो श्री सरस्वती जी के चबाये हुये पान के उगाल के रंग का है, जिस प्रसाद के सेवन से बधिर मूक भी कवि हो जाते हैं।

१०१ ध्यान—स—इस बीजाक्षर का ध्यान पृष्ठ १३ पर दिया है।

बीजाक्षर—'स'; जपसंख्या—१११०; जपस्थान—सहस्रारचक्र; होम—द्राक्ष, बिल्वफल, पायस और रक्तकमल से १११ या २१; तर्पण—२१; मार्जन—२१; श्लोकपाठ—२१; श्लोकपाठ आहुति—१६; पूजन-यन्त्र—
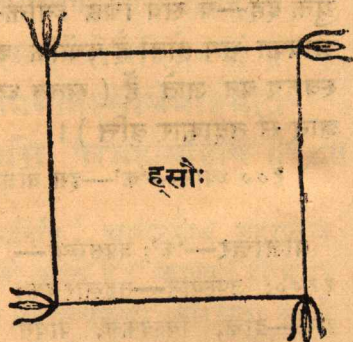
सरस्वत्या लक्ष्म्या विधिहरिसपत्नो विहरते।
रतेः पातिव्रत्यं शिथिलयति रम्येण वपुषा॥
चिरं जीवन्नेव क्षपितपशुपाशव्यतिकरः।
परानन्दाभिख्यं रसयति रसं त्वद्भजनवान्॥१०१॥

भावार्थ—हे मा ! आप श्री के उपासक सरस्वती और लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं तथा विष्णु एवं विधि के चित्त में ईर्षा उत्पन्न करते हैं। उस साधक का सौन्दर्य इतना बढ़ जाता है कि वह रति के पातिव्रत्य को शिथिल करने में भी सामर्थ्यवान

हो सकता है। वह पशुपाश से छूटकर दीर्घजीवी होता है और परानन्द-मिष्ठतम रस के स्वाद का भोगी होता है।

भजन-साधन यहाँ दो प्रकार का कहा है—१ षट्चक्र-भेद और २—धारणा। षट्चक्र-वेध विषय में किसी-किसी का कहना है कि प्रथम दो चक्रों (मूलाधार और स्वाधिष्ठान) में अन्धकार होने से उनमें आराधना नहीं हो सकती; सहस्रार-सहित अन्य पाँच चक्रों में आराधना का विधान है। परन्तु चक्रवेधाभ्यासियों का मन्तव्य इससे विपरीत है। उनका कहना है कि मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान में ध्यान करने से पहले अन्धकार भासता अवश्य है परन्तु थोड़े समय तक अभ्यास करने से वह स्थान काशमय दिव्य भासने लगता है और दिव्य मणिकाशमय वहाँ के दैवत श्री ब्रह्मा तथा श्री विष्णु का दर्शनभाव उन चक्रों में प्रकट होता है। इन चक्रों में आराधना किये बिना श्री कुण्डलिनी की जागृति सरलता से नहीं होती। षट्चक्र-वेध के विधान से साधना करनेवाले साधक के लिये इन चक्रों में आराधना करना अत्यन्त आवश्यक है। मणिपूर में उपासना करने से सारष्टि मोक्ष (समान नगर, स्थान, में रहना) होता है। अनाहतोपासना में सालोक्य मुक्ति, विशुद्धि की उपासना में सामीप्य, आज्ञा में सारूप्य और सहस्रार में सायुज्य मुक्ति होती है। इस प्रकार के उपासकों ने 'नादब्रह्म' को श्री चक्र कहा है तथा बिन्दु को षट्चक्र।

आराधना के द्वितीय प्रकार में नाद और कला-द्वारा प्राण की धारणा करते हैं। धारणा सात प्रकार की है। प्रत्येक धारणा की उपासना मूलाधार से सहस्रार-पर्यन्त भिन्न-भिन्न चक्रों में होती है। षट्चक्रों में धारणा करने का फल इस प्रकार है--

मूलाधार में धारणा करने से 'मति', स्वाधिष्ठान में स्मृति, मणिपूर में बुद्धि, अनाहत में प्रज्ञा, विशुद्धि में मेधा और आज्ञा में धारणा करने से प्रतिभा उत्पन्न होती है।

श्री मूलमन्त्र—जप-संख्या—१११११; जपस्थान—सहस्रारचक्र; होम—द्राक्ष, बिल्वफल, पायस और रक्तकमल से ११११; तर्पण—२१; मार्जन—२१; प्रथमश्लोक 'शिवः शक्त्या युक्तो' का पाठ २१; श्लोकपाठ आहुति—२१; श्रीयन्त्र-पूजन-यन्त्र—
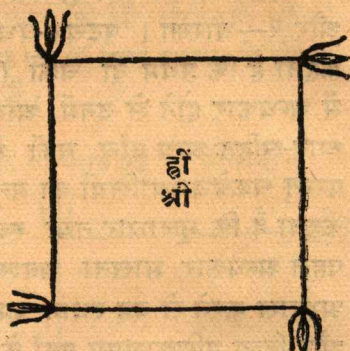
निधे नित्य स्मेरे निरवधिगुणे नीतिनिपुणे।
निराधारज्ञाने नियमपरचित्तैकनिलये॥
नियत्या निर्मुक्ते निखिलनिगमान्तस्तुतपदे।
निरातङ्के नित्ये निगमय ममापि स्तुतिमिमां॥१०२॥

भावार्थ—हे मा नित्ये! आप विश्वनिधि हो, आप श्री नित्य स्मेरमुखी हो, अनन्तगुणमयी हो, नीति-निपुण हो, सदैव झरनेवाला ज्ञान का झरना हो, नियमित चित्तवाली हो। नियति से निर्मुक्त हो। सर्व वेदोपनिषद् आप श्री का स्तवन करते हैं। आप श्री निरातङ्क हो, नित्य हो। आप कृपया मेरे इस स्तवन को स्वीकार करें।

प्रदीपज्वालाभिर्दिवसकरनीराजनविधिः ।
सुधा सूतेश्चन्द्रोपलजललवैरर्घ्यरचना ॥
स्वकीयैरम्भोभिः सलिलनिधिसौहित्यकरणं ।
त्वदीयाभिर्वाग्भिस्तव जननि वाचां स्तुतिरियं १०३

भावार्थ—हे मा ! आप श्री से उत्पन्न हुये शब्दों में आप के इस स्तवन की रचना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है, चन्द्रोपल-पात्र में चन्द्र को अर्घ्य देने के समान है; समुद्र को स्नान कराने के समान है ।

दिव्य शताक्षरी

इस मन्त्र के प्रत्येक बीज से सौन्दर्यलहरी का एक एक श्लोक आरम्भ होता है । यथा—

ह्रीं श्रीं ॐ शि तं अं त्वं हं धं क्वं सु मं सु चं त्वं नं दि शं कं।सं तं मु किं तं भं त्वं जं त्रं विं जं सु किं स्वं चं शिं स्मं शं मं तं विं सं तं तं तं गं धुं वं अं लं भ्रुं अं विं कं शिं गं विं पं निं तं हं अं स्फुं सं अं प्रं स्मिं अं रं विं कं भुं गं मृं नं सं अं वं तं हं यं स्थिं निं कुं गुं कं पं अुं नं मृं हिं पं नं दं पं गं अं सं कं पुं कं गिं सं कं सं ऐं क्लीं सौः क ए इ ल ह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं ह्रीं श्रीं ॥ ११२ मन्त्राक्षर ॥

श्री शताक्षरी महाविद्यान्यासः

१—ह्रीं श्री ॐ शि तं अं त्वं हं धं क्वं सु मं सुं चं त्वं नं दिं शं ऐं—मूलाधारे—मूलाधारचक्रे ।

२—ह्रीं श्रीं ॐ कं सं तं मु किं तं भं त्वं जं त्रं विं जं सुं किं स्वं क्लीं—लिंगे—स्वाधिष्ठानचक्रे ।

३—ह्रीं श्रीं ॐ चं शिं स्मं शं मं तं विं सं तं तं तं गं श्रुं वं अं सौः—नाभौ—मणिपूरचक्रे।

४—ह्रीं श्रीं ॐ लं भ्रुं अं विं कं शिं गं विं पं निं तं दं अं स्फुं सं कएइलह्रीं—हृदि—अनाहतचक्रे।

५—ह्रीं श्रीं ॐ अं प्रं स्मिं अं रं विं कं भुं गं मृं नं सं अं वं तं हं—हसकहल ह्रीं—कण्ठे—विशुद्धचक्रे।

६—ह्रीं श्रीं ॐ यं स्थिं निं कुं गुं कं पं श्रुं नं मृं हिं पं नं दं पं—सकल ह्रीं—भ्रुवौ—आज्ञाचक्रे।

७—ह्रीं श्रीं ॐ गं अं सं कं पुं कं गिं सं कं सं श्रीं ह्रीं ॐ-सहस्रारे—ब्रह्माण्डे।

श्री

माला के मान्य हितैषी

परम पूज्य १०८ श्रीमान्
बाबा मोतीलाल जी महाराज
पूज्य श्री के ही पुण्य आशीर्वाद
के बल पर 'साधनमाला' का
प्रकाशन सुस्थिर है।

प्रतिपालक — दाता-नरेश स्वनाम-धन्य राणा
श्री भवानीसिंह जी महाराज

संरक्षक — दाताराज्य के वर्तमान धर्मप्राण
श्री दरबार साहब

सहायक — श्री वनमाली हरगोविन्द पण्ड्या, बम्बई

पुण्य-स्मृति में ....

नियम

'साधनमाला' के प्रतिपालक...५०१)
,, ,, संरक्षक ...३०१)
,, ,, सहायक ...१०१)
पुण्य-स्मृति में ... ५१)

कल्याण मन्दिर, कटरा
प्रयाग-२